णीदि-रहस्सं

[नीति-रहस्य]

लेखक :

श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर जी

प्रकाशक

समर्पण समूह

जैनं वचनं सदा वंदे

समर्पण समूह, भारत

जैनं वचनं सदा वंदे

आशीषानुकंपा : पट्टाचार्य 108 श्री विशुद्धसागर जी यतिराज

कृति : णीदी-रहस्सं [नीति-रहस्य]

कृतिकार : श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर जी

संपादन : श्रुतप्रिय श्रमणरत्न श्री अप्रमितसागर जी

सहयोग : सहजानंदी श्रमणरत्न श्री सहजसागर जी

संस्करण : द्वितीय, 2000 प्रतियाँ, 2025

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान : समर्पण समूह, भारत
सागर – 97552-86521
जबलपुर – 98276-07171
इन्दौर – 98260-10104
इन्दौर – 94253-16840
भीलवाड़ा – 63766-49881
भोपाल – 91790-50222

मुद्रक : गुरु आशीष ग्राफिक्स
अंकित जैन शास्त्री, मड़देवरा, सागर
मो. : 9755286521, 8302070717

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
I .	शुभाशीष	VII
II .	संपादकीय	VIII
III .	प्रस्तावना	XI
1.	मंगलाचरण	1
2.	नीति, राजनीति और कूटनीति की परिभाषा	3
3.	नीतिमानों के 18 लक्षण	4
4.	बुद्धिमान के 4 विशेष गुण	5
5.	कौन-कौन क्या-क्या चाहता है?	6
6.	धन का लाभ कैसे होता है?	7
7.	क्या-क्या पुनः पुनः विचार करने योग्य है?	8
8.	कौन किसको नष्ट कर देता है?	9
9.	सर्वत्र कीर्ति बढ़ानेवाले 8 गुण	11
10.	जीवों के भिन्न-भिन्न प्रकार के धन	12
11.	संसार में क्या-क्या दुर्लभ है?	13
12.	सर्वत्र यशःकीर्ति अथवा प्रशंसा का पात्र कौन?	14
13.	किसे सुख प्राप्त नहीं होता?	16
14.	किसका विनाश शीघ्र होता?	18
15.	किस प्रवृत्ति के मनुष्य को कैसे वश करें?	19
16.	किससे किसकी रक्षा संभव है?	20
17.	किस क्रिया से किसकी वृद्धि होती है?	21
18.	किन-किन से हमेशा सावधान रहें?	23
19.	किन लोगों को स्वगृह में रहने न दें?	24

		पृष्ठ संख्या
20.	क्या होते हैं नीतिवाक्य?	25
21.	किन बातों को गुप्त रखना चाहिये?	27
22.	किन कारणों से बुद्धि, लज्जा, श्री आदि आपको छोड़ देते हैं?	28
23.	कौन-कौन विद्वज्जनों के स्वाभाविक मित्र हैं?	29
24.	नीतिमान करे लोभ से स्वरक्षा	30
25.	कैसे प्राप्त हो महान् व्यक्तित्व?	31
26.	कब किसकी प्रशंसा करनी चाहिये?	32
27.	सलाह किसे दें, किसे न दें?	33
28.	इच्छित पदार्थ की प्राप्ति किसे नहीं होती?	34
29.	अकाल, सूखा, मरण और भय कहाँ होता है?	35
30.	सर्वश्रेष्ठ नेता कौन होता है?	36
31.	बुद्धिमान के 4 विशेष कार्य	37
32.	क्या-क्या देर तक नहीं देखना चाहिये?	38
33.	किस संतान का जन्म लेना निरर्थक है?	39
34.	कब क्या समाप्त हो जाता है?	40
35.	कौन से काम अकेले नहीं करने चाहिये?	42
36.	बुरे लोगों से संगठित हो जाने पर क्या करें?	43
37.	क्या है मानसिक अंधकार और मानसिक आत्मघात?	44
38.	नीतिमान के लिये मनुष्य लोक के 6 विशेष सुख	45
39.	नीतिमान के लिये मनुष्य लोक के 8 विशेष दुःख	46
40.	किसे बनायें अपना सलाहकार?	47
41.	अयोग्य वस्तु और अयोग्य व्यक्ति को शीघ्र छोड़ दें?	48
42.	मूर्ख और नीतिमान-विद्वान में क्या अंतर है?	49
43.	लक्ष्मी किस-किस का साथ छोड़ देती है?	50
44.	किसके लिये क्या-क्या कष्ट देनेवाला है?	51

		पृष्ठ संख्या
45.	सुख-शान्ति का मूल क्या है?	53
46.	उत्तम-मनुष्यों के लिये सबसे बड़ा धन क्या है?	54
47.	कठिन संकटों से कौन पार हो जाता है?	55
48.	किन कारणों से जीवन में दुःख-ही-दुःख की प्राप्ति होती है?	56
49.	किसका क्रोध कैसे शान्त किया जा सकता है?	57
50.	विनय-दान से क्या-क्या लाभ है?	59
51.	सज्जनों के लिये जो गुण हैं, वो ही दुर्जनों के लिये अवगुण हैं	60
52.	किसके समीप लक्ष्मी का वास नहीं होता है?	61
53.	मित्र को मित्र बनाये रखने के उपाय क्या हैं?	62
54.	दूरियों से सज्जनों की मित्रता नहीं टूटती।	63
55.	अच्छे मित्र के लक्षण क्या-क्या हैं?	64
56.	किनके सामने चुप रहना चाहिये?	66
57.	मूर्खों के बीच विद्वानों की क्या दशा होती है?	68
58.	क्या हैं उन्नति के चार सूत्र?	69
59.	रिश्ते, किस्मत, जीवन, धनादि को शुद्ध करने का क्या उपाय है?	70
60.	ऐसे कौन-कौन लोग हैं जो कभी दूसरों का दुःख नहीं समझते हैं?	71
61.	लक्ष्मी, कीर्ति, विद्या और बुद्धि किसके अनुसार चलते हैं?	72
62.	शत्रु को नष्ट करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है?	74
63.	दीर्घायु होने का क्या कारण है?	75
64.	कभी भी किसी के भी दोष नहीं प्रकट करना चाहिये	76
65.	किन कारणों से मनुष्य की आयु घटती है?	78
66.	क्वचित् निंदक भी श्रेष्ठ है।	79
67.	ऊँचा नाम किसके कारण होता है?	80
68.	किसके बिना क्या व्यर्थ है?	81
69.	उत्तम पुरुषों को किसका भय रहता है?	83
70.	काम करने के पहले किन पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिये?	84

		पृष्ठ संख्या
71.	सफल होने के लिये किनसे दूर रहना चाहिये?	85
72.	किससे क्या सीखना चाहिये?	87
73.	मनुष्य कहलाने का सौभाग्य किसका है?	89
74.	मानव होने पर भी निर्जीव कौन है?	90
75.	बुद्धिमान लोक-व्यवहार का निर्वाह कैसे करें?	91
76.	प्राप्त-संपत्ति का अपव्यय करनेवालों का क्या होता है?	92
77.	मूर्खों के लक्षण क्या-क्या हैं?	93
78.	किस प्रकार से जीते-मरते आ रहे हैं लोग?	94
79.	निषेध में आकर्षण होता है।	96
80.	सबसे बड़ी संपत्ति क्या है?	97
81.	जीवन में होनेवाले हादसों से क्या-क्या लाभ है?	98
82.	उपलब्धियाँ और लक्ष्य प्राप्त करने का क्या उपाय है?	100
83.	आपके दुःख का कारण आप ही हैं	101
84.	मनुष्य जीवन के स्थिर-अस्थिर होने के क्या कारण हैं?	102
85.	भाग्य बनाने का उपाय क्या है?	104
86.	महान पुरुष पग-पग पर सफलता कैसे पा लेते हैं?	105
87.	सबसे सरल और सबसे कठिन काम क्या है?	107
88.	एक स्थान में अधिक ठहरने से क्या हानि है?	108
89.	सफलतायें किसको प्राप्त होती हैं?	109
90.	मनुष्य लोक के जन्म का क्या प्रयोजन है?	110
91.	आजीविका का साधन एक होना चाहिये या अनेक?	111
92.	किसके ज्ञान बिना आप क्या हैं?	112
93.	ग्रन्थकर्ता और ग्रन्थ-अध्ययन का फल	114
94.	ग्रन्थ-प्रशस्ति	116
95.	श्लोकानुक्रमणिका	120
96.	श्री आदित्यसागर जी द्वारा रचित ग्रन्थ-सूची	126

शुभाशीष

जीवन जीने की सुखद विद्या न्याय-नीति है। धर्मनीति का अर्थ है कि—**मेरे ऊपर दुःख न होने पाये और स्व के सुख में आँच न आने पाये।** वस्तु के वस्तुत्व का सत्यार्थ बोध करके आत्महित का विचार करना प्रत्येक नीतिज्ञ पुरुष का कर्तव्य है।

जैनदर्शन विश्व की सम्पूर्ण विद्याओं का कोष है। न्यायदर्शन, भूगोल, खगोल, ज्योतिष्य, मंत्र-तंत्र साहित्य, पुराण, कर्म-सिद्धान्त, आचरण, आयुर्वेद आदि साहित्य संपदा से युक्त है तो नीतिशास्त्रों से भी पूर्ण है। **जैन नीतिकारों ने मात्र स्वमुखी जीवन जीने के लिये नीति का प्रयोग नहीं किया, अपितु स्व-पर हितार्थ ''जीओ और जीने दो'' की नीति का प्रयोग किया है।** कुरलकाव्य, नीतिवाक्यामृत, क्षत्रचूड़ामणि, नीतिसारसमुच्चय से लेकर सत्यार्थबोध तक सहस्त्रों नीतिशास्त्रों की रचनायें समय-समय पर हुई हैं; जिनके अध्ययन से जीव सम्यक्नीति से अपना जीवन जी सकता है।

सम्प्रति श्रुतसंवेगी श्रमण मुनि श्री आदित्यसागर जी ने अगाध श्रुताराधना के माध्यम से स्वगुरु-उपदेश एवं स्वानुभव से ''नीतिरहस्य'' कृति का सृजन कर नीति श्री कोष को वर्धमान किया है। आप इसी प्रकार से सतत स्वाध्याय के माध्यम से नव-नव-नवनीत विश्व को प्रदान करें। यही शुभाशीष है।

।। ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।।

02.04.2024

कोपरगाँव महाराष्ट्र (भारत) **दिगम्बराचार्य विशुद्धसागर जी**

संपादकीय

विश्ववसुंधरा में अनेकों विद्याओं का उद्भव पुराण-पुरुषों के द्वारा संप्राप्त हुआ। अनोखी-अनोखी विद्यायें आगम में वर्णित हैं जिनमें निष्णात होकर अनेकों योगियों ने अपनी चेतना का निखार किया है। साथ ही भव्य जीवों को उसकी प्रेरणा भी दी है। संप्रति काल में भी ऐसे अनेक आचार्य, उपाध्याय और मुनि भगवंत हैं जो जैन विद्या में पारंगत होकर आगमानुसार चिंतन को गाथाओं, श्लोकों और सूत्रों के माध्यम से जिनशासन श्री श्रुतकोष की वृद्धि करने में अपनी प्रज्ञा का सदुपयोग करके महनीय भूमिका प्रदान कर रहे हैं।

ऐसा एक मांगलीक भाव **मेरे अग्रज प्राकृतविद्याव्यसनी, प्राकृतमनीषी, प्रज्ञावंत, प्रशस्त क्षयोपशमी, समीचीन नीति-रीति के साथ जीवन जीने वाले, बहुश्रुतज्ञ, परिश्रमी, अनुशासित, अनुशासनप्रिय, श्रुतसंवेगी महाश्रमण आदित्यसागर जी महाराज** के मस्तिष्क पटल अंकित हुआ; क्यों न प्रीति का वर्द्धन करनेवाले, रीति का जीवन सिखाने वाले, समीचीन नीति के अद्भुत रहस्यों से भरा हुआ एक दिव्य ग्रंथ सुधी पाठकजनों के मध्य प्रस्तुत किया जाये।

यह मांगलीक भाव उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण भी किया और एक दिव्य ग्रंथ **''णीदि-रहस्सं''** को प्रस्तुत कर दिया। यह ग्रंथ सर्वगुणों का वर्धन करनेवाला है सर्वनीतियों के सार को ग्रहण करके रचा गया। इस नीति-रहस्य ग्रंथ में पूज्य श्री ने कहा—

जो स्वयं को सुख दे, अन्य जनों को जिससे दुःख भी न हो यह नीति है और जो स्वयं को सुख दे, अन्यजनों के सुख को छीन ले वह राजनीति अथवा कूटनीति है। अब नीति परक कुछ नीतियों को यहाँ देखते हैं—

*** नीतिमान पुरुषों के अठारह बहिरंग लक्षणों को कहकर नीतिपुरुष बनने की प्रेरणा दी है।**

*** बुद्धिमंत लोगों में विशेष बनने की प्रेरणा दी है। किसको किस वस्तु की चाह होती है, यह बतलाकर श्रेष्ठ चाह की प्रेरणा देकर श्रेष्ठ राह पर चलने की प्रेरणा दी है।**

*** धन प्राप्ति के सम्यक् साधन बतलाकर धनाभिलाषी प्राणियों के लिये सम्यक् प्रेरणा दी है।**

*** पुनः पुनः क्या-क्या करणीय है, यह बतलाकर अपनी करनी को सुधारने की प्रेरणा दी है।**

*** संसार में सर्वत्र यशः कीर्ति और प्रशंसा की पात्रता को दिलाने वाली नीति लिखकर जगत् प्रशंसनीय बनने की प्रेरणा दी है।**

*** कब किसकी प्रशंसा करना चाहिये, इस नीति को बतलाकर भव्य जीवों को महान बनने की प्रेरणा दी है।**

*** आजीविका का साधन एक नहीं अनेक होना चाहिये, यह बतलाकर दूरदर्शिता बढ़ाने की प्रेरणा दी।**

ऐसी कई नीतियाँ इस अनुपम ग्रंथ "**णीदि-रहस्सं**" में रचकर पूज्य श्री ने सांसारिक प्राणियों के दुःख को हरने का अद्भुत प्रयास किया है। यूँ तो पूज्य श्री की अनेकों कृतियों का अध्ययन हमने किया है, लेकिन इस कृति की बात को कुछ और ही है जिसे सुधीपाठकगण पढ़कर ही जान सकेंगे।

इस कृति से यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट होती है कि—पृज्य श्री ने विशुद्ध महोदधि से संप्राप्त ज्ञान मोतियाँ को एक माला की तरह पिरोकर ही रख दिया है। आपने इस कृति की रचना करके प्रज्ञावंत गुरु के प्रज्ञावंत शिष्य होने का प्रमाण दे दिया है।

आपका हर पल आगम के ग्रंथों का अध्ययन, मनन, चिंतन और मंथन करने में लगा रहता है। श्रुतसंवेगी शब्द की जो भूमिका है उसे आप पूर्ण तरह से निभा रहे हैं। **आपने हिन्दी, प्राकृत, अंग्रेजी, संस्कृत, अपभ्रंश आदि सोलह भाषाओं से संस्कृत होकर संस्कारित शिष्य होने का गौरव भी प्राप्त कर लिया है।**

पूज्य श्री की यूँ तो अनेकों विशेषतायें हैं उनमें से एक विशेषता यह है कि— **जो कार्य अपने हाथ में लेते हैं उसे पूर्ण निष्ठा के साथ, समय की अवधि को निर्धारित करके उसी अवधि में पूर्ण भी करते हैं।**

अभी तक पूज्यवर लगभग 50,000 श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत साहित्य रचना कर चुके हैं और लगभग 1 लाख श्लोक प्रमाण रचना करने भाव बना चुके हैं। उनका यह अथक परिश्रम ही बतला रहा है कि—यह भाव भी शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण होगा।

मेरा अहो! अहो! अहो! सौभाग्य रहा कि–मुझ अल्पश्रुतज्ञ को संपादन करने का अवसर प्रदान किया गया। मुझे इस कृति से नीति, रीति और प्रीति के साथ जीवन जीने की प्रेरणा मिली।

अगर इस कृति के संपादन में कोई त्रुटि अवशेष हो तो बुधजन मुझे इस त्रुटि से अवगत कराने की कृपा करें क्योंकि आगम में भी कहा है—

''को न विमुह्यति शास्त्र समुद्रे''

अगर मुझ छद्मस्थ से संपादन करते समय कोई त्रुटि अवशेष रह गयी हो तो सरस्वती माँ मुझे क्षमा करें।

॥ विशुद्धात्मने नमः ॥

28/3/224
ग्रीष्मकालीन वाचना
आर.के. पुरम् कोटा, राजस्थान
(भारत)

विशुद्धगुणाकांक्षी
श्रुतप्रिय श्रमणरत्न अप्रमितसागर

प्रस्तावना

—प्राकृतमनीषी श्रुतसंवेगी
महाश्रमण आदित्यसागर जी

नीतिज्ञान की प्राप्ति नीतिज्ञान के साहित्य और स्वानुभव से ही संभव है। स्व-पर की रक्षा करनेवाला साहित्य नीति-साहित्य कहलाता है। जहाँ नीति का पालन या आचरण रहता है, वहीं धर्म रहता है। धर्मोपदेशक धर्म के मूल सिद्धान्तों का कथन नीति के धरातल पर ही करते हैं।

जैनदर्शन में परिणामों की विशुद्धि का निरंतर सद्भाव रहना ही सर्वोत्तम-धर्म कहा गया है। पूर्वाचार्यों ने धर्म की अनेकों परिभाषायें स्वज्ञान और स्वानुभव से हमें प्रदान की हैं। **यथा—वस्तु का स्वभाव धर्म, उत्तमक्षमादि भाव धर्म है, रत्नत्रय धर्म है, पदार्थों पर समीचीन आस्था धर्म है, जीवों की रक्षा करना धर्म है, जो उत्तम स्थान पर स्थापित कर दे; वह धर्म है अथवा जो सभी सुखों का साधन है, वह धर्म है; इत्यादि।**

वास्तविकता में धर्म वो मार्गदर्शक है, जो हमें हमारे अंदर जाने के रास्ते का पता बताता है। जो स्वयं को करना है, स्वयं तक जाने के लिये है, वह स्वयं की यात्रा सत्यार्थ धर्मयात्रा है। यह धर्म-यात्रा बिना परिणामों की विशुद्धि के असंभव है और परिणामों की विशुद्धि के लिये रीति-नीति का ज्ञान परमावश्यक है।

*** धर्म में नीति और नीति में धर्म—**

धर्म, नीति के बिना अधूरा है और नीति, धर्म के बिना खोखली है। जो धर्म-रुचि से मुक्त मानव नीति-ज्ञान में पारंगत होता है, वही जिनधर्म-स्वधर्म-परधर्म सभी की रक्षा कर पाता है, लेकिन **जो नीति-निपुण-मानव धर्म विहीन होता है, वह दिशा-विहीन अथवा लक्ष्य-विहीन होने के कारण अधूरेपन में ही जीवन व्यतीत करता है।**

धर्म या शिवसुख की प्राप्ति लक्ष्य है, साध्य है एवं नीतिज्ञान उसकी प्राप्ति का समीचीन साधन है, उपाय है। अत: प्रत्येक धर्मात्मा को धर्म की क्रिया के काल में नीति का ज्ञान रखना आवश्यक है और प्रत्येक नीतिमान पुरुष को धर्म का आश्रय लेना परमावश्यक है।

*** धर्म का अंग नीतिज्ञान—**

नीतिज्ञान धार्मिक विषयों के ही अंतर्गत आता है। कई अज्ञानी लोगों की यह मान्यता है कि—नीतिमान होना यानि मायाचारी, प्रपंच, परवंचना का ज्ञानी होना। गंभीरता से समझें—**दूसरों को ठगना यह नीति नहीं है, यह तो कुनीति है।**

जो स्वयं के सुख के साथ-साथ दूसरों के जीवन में भी सुख-समृद्धि की वृद्धि करा दे, वही है सम्यक् नीति, सुनीति; किन्तु जो स्वयं के जीवन में सुख-समृद्धि की वृद्धि करे और दूसरों के जीवन में दु:खों की पीड़ा की वृद्धि करा दे; वही कुनीति कही जाती है। राजनीति, कूटनीति, षड्यंत्रादि इसी के भेद हैं।

एक विशेष बात और है कि—नीति किसी धर्म विशेष की नहीं होती है। कोई धर्म वाला ये भी नहीं कह सकता कि—यह नीति हमारे धर्म की है। नीति सभी धर्मों में होती है, किन्तु सामान्य-नीति सभी धर्मों में होती है, जो विशेष नीति होती है, वह उस धर्म का मौलिक सिद्धान्त कही जा सकती है। **धर्म नीतियों का भंडार होता है। जिस धर्म में नीति नहीं होती, उसे धर्म नहीं कहा जा सकता है।**

धर्म और नीति का अविनाभावी संबंध है। धर्म नीति है या नीति धर्म है, इसके दोनों कथन समीचीन हैं। धर्म-नीति का अनुसरण सभी करते हैं, किन्तु जो धर्मनीति को आचरण में उतार लेते हैं; वे महात्मा, साधु-संत, धर्म-गुरु, संयमी या मोक्षमार्गी कहे जाते हैं।

नैतिकता आज भी श्रेष्ठता का पैमाना है, अत: श्रेष्ठ समाज में नैतिक मूल्यों

की अवधारणा आज भी जीवन्त है। यही कारण है कि—**शिक्षा के क्षेत्र में नैतिकता, नैतिक-आचरण का आज भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। नीति का संबंध किसी धर्म से नहीं, अपितु सभी धर्मों का संबंध नीति से है।** जब तक नीति और नैतिकता है, तभी तक धर्म का अस्तित्व है। उत्तम, सदाचारी और धर्मात्मा समाज की आधारशिला बिना नीति के नहीं रखी जा सकती है। **नीति ही महत्त्वपूर्ण धर्म है।** यही मानव मात्र के लिये उपयोगी है।

*** नीतिज्ञान सर्वोत्तम ज्ञान—**

नीतिज्ञान कभी बासा नहीं होता अर्थात् पुराना नहीं होता है। नीति के ग्रन्थों का जब-जब भी अध्ययन करते हैं, तब-तब ही अपूर्व-अनुभव होता है। **नीति वह नवनीत है जिसके निमित्त से जीव प्रथम तो सुसंस्कारों को प्राप्त करता है, पुनश्च नैतिकाचरण के द्वारा अपने जीवन को आनन्दमय बनाने के साथ-साथ सत्यार्थ-मोक्षमार्ग को भी संप्रशस्त करता है।**

नैतिक आचरण के बिना मनुष्य न तो उत्तम-उद्यम कर सकता है और न ही समाज, परिवार, संबंधियों अथवा देश-राष्ट्र आदि में अपना अस्तित्व बना पाता है। नीतिमान पुरुष के आचरण, वचन और क्रियाओं को सभी जीव प्रमाण तो मानते ही हैं, उनका अनुकरण करके उसे श्रेष्ठता की कसौटी पर रखकर उन जैसे कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। **जिन व्यक्तियों का जीवन नीति और नैतिकता के मंजन से परिमार्जित नहीं है, उन्हें सज्जनता का तिलक, महानता की माला और आदरता का आवरण नहीं उड़ाया जाता है।** यह प्राय: लोक में लोकाचार का प्रथम सोपान माना जाता है।

जो दु:खों की इति (समाप्ति) करके सुखों की अति-प्राप्ति करा दे, वह नीति है अथवा जिसकी कभी इति अर्थात् अंत नहीं होता है, वह नीति है। नीति का प्रयोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार करना ही श्रेयस्कर है। नीति और नैतिकाचरण

अनादि-अनिधन है। प्रत्येक काल में इसका प्रादुर्भाव रहा है। जब तक नीति रहेगी तब तक लोगों में नैतिकता रहेगी, नैतिकाचरण का बहुमान रहेगा; तब तक धर्म फलता-फूलता रहेगा। नैतिकाचरण ही आत्मसुख-शान्ति, प्रगति, उत्थान, लोकप्रियता एवं आत्मोद्धान का साधन होता है। इसके लिये जो सूत्रादि का सृजन महापुरुषों के माध्यम से जन-जन को प्राप्त होता है, वह नीतिसूत्र या नीतिवाक्य कहे जाते हैं।

*** नीतिज्ञ के लक्षण—**

नीतिज्ञ बनना यानि स्वयं को तपाना है। नीतिकार वही हो सकता है जिसने कठिनाइयों में अपने आपको परिष्कृत किया हो, तपाया हो, स्वयं के मन को बांधा हो और सभी जीवों में समान जीवन-शक्ति को स्वीकार किया हो। दोहरे व्यक्तित्व वाला आदमी या दो चेहरे वाला आदमी कभी भी नीतिकार नहीं हो सकता है। पहले उसे स्वयं को परिमार्जित करना पड़ता है, पश्चात् वह अन्य को परिमार्जित कर सकता है और तभी उसके कथन का दूसरों पर प्रभाव पड़ सकता है।

नीतिज्ञ पुरुष शान्त, धैर्यवान्, कम बोलनेवाला ज्यादा सुननेवाला, सहनशील, मिलनसार, चिंतक, अनुभवी, और हर परिस्थितियों को भापने वाले होते हैं। इनके अलावा भी नीतिज्ञ पुरुषों के अनेकों लक्षण होते हैं।

*** प्राचीन नीतिकार एवं वर्तमान नीतिकार—**

नीतिग्रंथों का सृजन करनेवाले प्रत्येक शताब्दी में उत्पन्न हुये। कुछ प्रसिद्ध हुये तो कुछ विलुप्त हो गये, कुछ आज भी पढ़े जा रहे हैं। **आचार्य सोमदेव, आचार्य वादीभसिंह आदि प्रसिद्ध जैनाचार्य नीतिकार हुये हैं।** यद्यपि लोक में चाणक्य, विदुर, विभीषण और नारद आदि नीतियाँ प्रसिद्ध हैं, किन्तु ये नीतिग्रन्थ इन्हीं लोगों के द्वारा लिखित हैं या अन्य के द्वारा इसका प्रमाण संदिग्ध है।

नीति की ऐतिहासिकता प्राचीनकाल में गुरुकुलों में नैतिकता की शिक्षा बौद्धिक

रूप से तथा आचरण रूप से गुरुओं के द्वारा प्रदान की जाती थी, जिससे छात्र बाल्यावस्था में ही संस्कारित होना प्रारंभ हो जाता था। कालान्तर में कथा साहित्य के माध्यम से नीति का कथन जन-जन तक पहुँचने लगा। प्रत्येक घर चौपाल पर नैतिकता के क्षेत्र में श्रेष्ठता को प्राप्त महापुरुषों के जीवनवृत्त के माध्यम से नीति को महिमा मण्डित किया गया। जो आत्मोन्नति का साधन ही बनता था।

जैनाचार्य नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी होते हैं, अत: सर्वश्रेष्ठ नीतिकार जैनाचार्य रहे हैं। पूर्वाचार्यों के द्वारा सृजित-ग्रन्थों में नीति-श्लोकों को समाहित किया है।

आदिपुराण आचार्य जिनसेन स्वामी, वरांगचरित आचार्य जटासिंहनंदि स्वामी, पद्मपुराण श्रीमद् रविषेण स्वामी, हरिवंश पुराण श्री जिनसेन स्वामी द्वितीय, क्षत्रचूड़ामणि श्री वीदीभसिंहाचार्य, पाण्डवपुराण श्री शुभचन्द्राचार्य, प्रद्युम्नचरित श्री महासेनाचार्य, धर्मपरीक्षा श्री अमितगतिस्वामी, प्रश्नोत्तर रत्नमालिका श्रीराजर्षि अमोघवर्ष मुनिराज, मदनपराजय इत्यादि महान् ग्रन्थों को रचकर जैनाचार्यों ने युगों-युगों तक नैतिक जीवन शैली को गति प्रदान की है। इस प्रकार अनेक जैनागम के नीति ग्रन्थ नीतिश्लोकों से लबालब भरे हुये हैं।

अनेकों शताब्दियाँ बीतीं पर समय-समय पर नीतिकार उत्पन्न होते रहे। **वर्तमान में २१वीं शताब्दी में शताब्दी देशनाचार्य १०८ गुरुवर श्री विशुद्धसागर जी सर्वश्रेष्ठ नीतिकार हैं।** चाहे युवा हों या वृद्ध सभी आपकी नीति से प्रभावित हैं। नीतिग्रन्थों की लेखन प्रक्रिया प्राय: चलती ही है कभी कम कभी अधिक, किन्तु नीति लिखी जरूर गई है।

*** नीति के भेद-प्रभेद—**

नीति के ग्रन्थ अनेक विषयों से युक्त होते हैं और नीति के भेद-प्रभेद भी अनेकों

प्रकार के पाये जाते हैं। जितने प्रकार के समाधान हैं, उतने प्रकार की नीति समझना चाहिये। प्रमुख रूप से नीति के कुछ भेद प्रचलित हैं, उन्हें यहाँ देखते हैं—

1. **धर्मनीति।**
2. **राजनीति**
3. **कूटनीति।**
4. **शिक्षानीति।**
5. **कृषिनीति।**
6. **व्यापारनीति।**
7. **विज्ञापननीति।**
8. **व्यवहारनीति।**
9. **अध्यात्मनीति।**
10. **युद्धनीति।**
11. **दण्डनीति।**
12. **जीवननिर्वाहन-नीति।**
13. **दूतनीति।**
14. **विचारनीति।**
15. **सदाचारनीति।**
16. **जनपदनीति।**
17. **तात्कालिकनीति।**
18. **संस्कारनीति।**
19. **विवादहरणनीति।**
20. **बलप्रयोगनीति।**

वैसे तो प्रायः करके नीति के चार प्रमुख भेद प्रसिद्ध हैं—**1. शाम, 2. दाम, 3. दण्ड और 4. भेद।** कुछ भेद या प्रभेद पुण्यास्रव का कारण है तो कुछ भेद या प्रभेद पापास्रव का कारण हैं। **जैसा प्रयोग जैसे भावों से किया जाता है, नीतिज्ञान वैसा ही फलित होता है। विशेष बात यह है कि नीति खेलने वाले की नीति तभी सफल होती है जब सामने वाले के पाप का उदय होता है। पुण्यात्मा के खिलाफ खेली गई नीति निष्फल हो जाती है।**

*** प्रकृत नीतिग्रन्थ :: णीदि-रहस्सं—**

'णीदि-रहस्सं' ग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखित जैनागम का प्रथम नीतिग्रन्थ है। यहाँ ग्रन्थ मात्र 8 दिनों में साहित्यनगरी चिरगाँव, उत्तरप्रदेश में लिखा गया था। मंगलाचरण

2 गाथाओं में किया गया। तदुपरान्त उपजाति, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा छन्द में 105 श्लोक हैं। अंत में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में ग्रन्थ का फल और कर्ता का उल्लेख संप्राप्त है।

इस ग्रन्थ में चिंतन, मनन, स्वानुभव आदि से मिश्रित अनेक मौलिक विषय समुपलब्ध हैं। **देश-राष्ट्र-समाज, वृद्ध, प्रौढ़, युवक-युवती, बालक, शैक्ष्य, रोगी, व्यापारी, खिलाड़ी, क्रोधी, धर्मात्मा आदि सभी वर्ग के लिये अभिनव प्रमेय है।**

*** ग्रन्थ नीतिरहस्य (णीदिरहस्सं) का विषय प्रमेय**—

सर्वप्रथम दो आर्यागाथाओं के माध्यम से प्रभुस्मरण, इष्टभक्ति के साथ ग्रन्थव्याख्यान की प्रतिज्ञा की गई है। यथा—

सव्वकला-संपण्णं, णीदिविज्जा-सुणाण-संपण्णं।
मोह-कत्ता-विहूणं, परमप्पाणं णमस्सामि॥1॥
काऊण णमुक्कारं, विण्हुं बुद्धं सिवं जिणिंदं वा।
वोच्छं णीदिरहस्सं, बुद्धि-गुणवड्ढगं समासेण॥2॥

अर्थात् जो सम्पूर्ण कलाओं से सम्पन्न हैं, जो नीति विद्या और केवलज्ञान से सम्पन्न हैं तथा जो मोह और कर्तृत्वभाव से रहित हैं, उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे गुण सहित अवगुण रहित विष्णु, शिव, बुद्ध अथवा जिनेन्द्रदेव को प्रमाण करके बुद्धि और गुणवर्धक नीतिरहस्य ग्रन्थ को कहता हूँ।।1/2।।

मंगलाचरण के पश्चात् श्लोक 3 में नीति, राजनीति और कूटनीति की परिभाषा लिखी है। जो स्वयं को सुख दे, किन्तु पर को दुःख न दे वह सुनीति है एवं जो स्वयं का सुख-बढ़ाये और अन्य जनों का दुःख बढ़ाये वह दुष्टजनों के लिये प्रिय राजनीति अथवा कूटनीति है।।3।।

श्लोक 4 व 5 में नीतिज्ञों के 18 बहिरंग लक्षणों का संकेत देते हुये लिखा है कि—**सरलता, करुणा, शान्तता, संतुष्टता, धीरता, गंभीरता, निर्भयता, सत्यता,**

कर्तव्यनिष्ठता, विनय, मृदुता, अनासक्ति, स्वशासन, प्रामाणिकता, क्षमाशीलता, पांडित्य, मधुरभाषण और मौन; ये 18 दुर्लभ गुण एक साथ जिसके पास हों, वही नीतिज्ञ सर्वश्रेष्ठ नीतिज्ञ कहलाता है।।4/5।।

आगे स्वयं की परीक्षार्थ बद्धिमानों के चार विशेष गुण कहे हैं—**1. खुशमिज़ाजी (प्रसन्नचित्तता), 2. समझदारी (प्रज्ञावंतता), 3. सच बोलना (सत्यवादिता) और 4. हाज़िरजवाबी (प्रत्युत्पन्नमति)॥6॥**

कौन क्या चाहता है, इस इच्छात्मक नीति को समझाते हुये कहा गया है कि—**मक्खी को घाव की, राजा को सम्पूर्ण धन-सम्पत्ति की, महिलाओं को स्वप्रशंसा की, नीच-पुरुषों को कलह की, संतान को स्नेह/प्रेम की, मित्र को विश्वास की और साधु-संतों को शान्ति की चाहत रहती है॥7॥**

श्लोक 8 में उपजाति छन्द में अर्थ विषयक नीति बतलाई गई है। वहाँ कहा गया है—भूलोक में मनुष्यों के धनलाभ के 5 मुख्यकारण हैं; **1. सद्गुरुओं का मंगलाशीष, 2. निरंतर एक दिशा में परिश्रम, 3. पिता का कुल अथवा माता-पक्ष अर्थात् वंश परंपरा, 4. मित्र-इष्टों का सहयोग और 5. प्रबल पुण्योदय। ये 5 कारण जीवों को धनादि-ऐश्वर्य देते हैं॥8॥**

आगे चिंतनात्मक नीति इन्द्रवज्रा छन्द में कही है। 6 बातें हर प्राणी को पुनः पुनः चिंतन करनी चाहिये—**1. मेरी आय और व्यय कितनी है, 2. मैं कौन हूँ, 3. क्या समय चल रहा है, 4. कौन सा क्षेत्र है, 5. कौन-कौन मित्र है तथा 6. इस जीवन में मैंने अपने लिये क्या किया है? ऐसा चिंतन मनुष्यों को नीतिनिपुण बनाता है॥9॥**

श्लोक 10 एवं 11 में मान सर्वहानिप्रद है इसकी प्रेरणा देते हुये कहा कि—बुढ़ापा तो रूप को, आशा धीरज को, क्रोध कान्ति और लक्ष्मी को, मृत्यु प्राणों को, काम-वासना लज्जा को, कुपुत्र कुल को, परिग्रह मुनि को, दुर्मंत्री राजा को, अधिक रुकना प्रीति

को, प्रमाद धन को, दुष्टजनों की संगति शील को नष्ट कर देती है, किन्तु एक मान ही ऐसा है जो अकेले ही सम्पूर्ण गुणों को नष्ट कर देता है।।10/11।।

श्लोक 12 में कीर्तिवर्धक आठ गुणों का निरूपण है। श्लोक 13 में अर्द्धधन, महाधन, पूज्यधन और सत्यार्थधन की व्याख्या है।। श्लोक 14 में छह बहु-दुर्लभ चीज़ों का निरूपण है। श्लोक 15 एवं 16 में सर्वत्र प्रशंसा का पात्र कौन है, इसे बताते हुये कहा कि—जगत्प्रशंसनीय बनने के लिये 8 गुणों का या 8 क्रियाओं का जागरण करना चाहिये।

किस जीव को कभी सुख प्राप्त नहीं होता, इस नीति का कथन आगे के दो श्लोकों में है। श्लोक 19 में मनुष्य के शीघ्र विनाश के चार कारण बतलाये हैं। आगे कहा कि—नाना स्वभाववाले मनुष्य इस लोक में हैं और उन्हें वश करने के भी नाना उपाय हैं। यथा—लोभी को धन से, मदांध को विनय से, शूद्र को शक्ति से, ब्राह्मण को भोजन से, मूढ़ को उसके इष्टकार्य से तथा क्षत्रिय को मान देकर वश में किया जाता है।

श्लोक 21 रक्षात्मक नीति का भंडार है। इसमें कुल, रूप, विद्या और धर्म की रक्षा के 3 उपाय बतलाये गये हैं। आगे दो श्लोकों में मैत्री, कीर्ति, योग्यता, राज्य, लक्ष्मी, विद्या, शक्ति, प्रभुत्व, विश्वास, पाप, तप और अनुराग की बढ़ोत्तरी के माध्यम बताये गये हैं।

पुनः सावधान करनेवाली नीति कही गई। कहा गया कि—9 प्रकार के जीवों से सावधान रहें तो ही आपकी पर्याय सुरक्षित रह पायेगी। **वास्तविकता में नीतिज्ञान जीवों की रक्षा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।** कलियुग में पग-पग पर छलिया जीव उपस्थित हो जाते हैं और असमझदार अनीतिज्ञ लोग ठगी का शिकार हो जाते हैं।

मनुष्य को हर किसी को अपने घर में निवास नहीं करना चाहिये। इस नीति को न माननेवाले जीवन के अंत तक पश्चात्ताप ही करते रहते हैं। ऐसी नीति श्लोक 25 में कही। आगे नीति के रहस्यों का संबोधन, गुप्त रखने योग्य बातें, बुद्धि-लज्जा-श्री-शान्ति और कीर्ति के दूर होने का कारण, विद्वानों के साथ स्वाभाविक मित्र, लोभ सर्वनाश का कारण, महान् व्यक्तित्व की प्राप्ति के उपाय, सलाह किसे दें किसे न

दें इत्यादि बुद्धिवर्धक, आत्मरक्षक, गुणविवर्धक, प्रज्ञारक्षक, समाज-शान्तिप्रदायक, ग्रहणत्यागात्मक अनेक विषयवस्तु से युक्त नीतियों का खजाना सहज और सरल शब्दों प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में 107 गाथा पर्यंत नीतिज्ञान का विशाल सागर उपलब्ध है और अंत में श्लोक 108 में शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में ग्रन्थकर्त्ता, उनके गुरु, ग्रन्थ-अध्ययन के फलादि का वर्णन करके ग्रन्थ की पूर्णता हुई है।

यह नीति-रहस्य ग्रन्थ अनेकों दुःखों से जीवों की रक्षा करनेवाला है और अनेकों गुणों का आरोपण भी करनेवाला है। इस ग्रन्थ का अध्ययन अनंत क्लेशों के निमित्त से बचानेवाला है। प्राकृत वाङ्मय में लिखा गया यह **'णीदि-रहस्सं'** ग्रन्थ छन्दापेक्षा 108 पदों का है और अनुष्टुप् श्लोकों की अपेक्षा से 149 श्लोक प्रमाण जानना चाहिये। **इस ग्रन्थ के संपादन में श्रुतश्रमी श्रुतप्रिय श्रमण श्री अप्रमितसागर जी का अप्रमित योगदान रहा। साथ ही अपना पूर्ण सहयोग देकर सहजानंदि श्रमण श्री सहजसागर जी ने इसे पूर्णता दी है।**

अन्त में यही कहूँगा कि–यह ग्रन्थ कमजोरियों को हटाकर शक्तियों को बढ़ानेवाला है। यह ग्रन्थ-साहस, लगनशीलता, संवेदनशीलता, आत्मजागरण, मिलनसारता, दृढ़-इच्छाशक्ति, शान्तता, उपायकुशलता, स्फूर्ति, आदरपूर्ण-व्यवहार, प्रफुल्लितपना, आत्मनिर्भरता, संतुष्टि, धैर्य, सकारात्मकता, सहजता, भद्रता, सशक्त, आत्मविश्वास, आकर्षकता, सहिष्णुता, सक्रियता, क्षमाशीलता, लोकप्रियता, नेतृत्वकला, लोकप्रियता, आध्यात्मिकता, कुशलव्यवहारता, स्वतंत्रता, लोकप्रियता, आध्यात्मिकता, कुशलव्यवहारता, स्वतंत्रता, खुशमिज़ाजी इत्यादि सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करने में परम सहायक है। यह ग्रन्थ सभी प्राणियों के लिये अनुपम पाथेय बने। यही शुभभावना॥

॥ णमो णमो सिद्ध-साहूणं ॥

3/3/24
रामपुरा, कोटा, राजस्थान
भारत

विशुद्धपदाकांक्षी
लघुश्रमण

मंगलाचरणं
(आर्यगाथा)

सव्वकला - संपण्णं, णीदिविज्जा - सुणाण - संपण्णं।
मोह - कत्ता - विहूणं, परमप्पाणं णमस्सामि॥1॥

काऊण णमुक्कारं, विण्हुं बुद्धं सिवं जिणिंदं वा।
वोच्छं णीदिरहस्सं, बुद्धि - गुण - वड्ढगं समासेण॥2॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(सव्वकला-संपण्णं)** जो सम्पूर्ण कलाओं से सम्पन्न हैं, **(णीदिविज्जा-सुणाण-संपण्णं)** जो नीतिविद्या और केवलज्ञान से सम्पन्न हैं और **(मोह-कत्ता-विहूणं)** जो मोह तथा कर्त्तृत्वभाव से रहित हैं; **(परमप्पाणं)** उन परमात्मा को **(णमस्सामि)** मैं नमस्कार करता हूँ॥1॥

ऐसे मोह और कर्त्तृत्व से रहित **(विण्हुं)** विष्णु, **(बुद्धं सिवं वा)** बुद्ध, शिव अथवा **(जिणिंदं)** जिनेन्द्र देव को **(णमुक्कारं काऊण)** नमस्कार करके **(बुद्धि-गुण-वड्ढगं णीदिरहस्सं)** बुद्धि और गुणों का वर्धन करनेवाले इस ''**नीतिरहस्य**'' नामक ग्रन्थ को **(समासेण वोच्छं)** संक्षेप से मैं कहता हूँ॥2॥

भावार्थ—यहाँ मंगलाचरण में परमात्मा को नमस्कार करके ग्रन्थकार ग्रन्थ लेखन की प्रतिज्ञा करते हुये कह रहे हैं कि—**जो सम्पूर्ण कलाओं से संपन्न हैं, नीतिज्ञान और केवलज्ञान से संपन्न हैं तथा जो मोह अर्थात् सर्वदोष और**

कर्त्तृत्वभाव से रहित हैं; उन सर्वज्ञ कर्मरहित परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे मोह और कर्त्तृत्वभाव से रहित विष्णु, ब्रह्मा, बुद्ध, शिव अथवा जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके बुद्धि और सर्वगुणों का वर्धन करनेवाले इस सर्वनीतियों के सारभूत ''नीति-रहस्य'' नामक मंगलकारी ग्रन्थ को मैं संक्षेप से कहता हूँ॥1-2॥

पड़ोसी की तुष्टि.....

किसी ने पूछा-
भगवान से माँगना हो
तो आप क्या माँगेंगे?
मैंने कहा-
हे भगवान!
मुझे शान्ति दो
और
मेरे पड़ोसी को संतुष्टि।

अब यहाँ नीति, राजनीति और कूटनीति की परिभाषा को व्याख्यायित करते हैं—

(उपजाति)

सगं सुहं देदि ण अण्णदुक्खं, सिट्ठप्पिया सा किल णीदिविज्जा।
सगं सुहं वा पुण अण्णदुक्खं, दुट्ठप्पिया सा णिव-कूड-णीदी॥3॥

अन्वयार्थ—**(सगं सुहं अण्ण-दुक्खं)** जो स्वयं को सुख और अन्य जनों को दुःख **(ण देदि)** नहीं होने देती; **(सा किल)** वही निश्चय से **(सिट्ठ-प्पिया णीदिविज्जा)** शिष्टजनों के लिये प्रिय कहे जानेवाली नीतिविद्या है। **(वा)** और **(सगं सुहं पुण अण्ण-दुक्खं देदि)** जो स्वयं को सुख पुनः अन्य जनों को दुःख ही देती है **(सा किल)** वही निश्चय से **(दुट्ठ-प्पिया णिव-कूड-णीदी)** दुष्टों के लिये प्रिय कहे जानेवाली नृपनीति/राजनीति और कूटनीति है॥3॥

भावार्थ—यहाँ पहली पंक्ति में नीति की परिभाषा करते हुये लिखा है कि—**जो स्वयं के जीवन में सुख दे, किन्तु अन्य जीवों को जिससे दुःख किंचित् भी न हो, वह विद्या/ज्ञान नीतिज्ञान कहलाता है।** यह ज्ञान भद्र, शिष्ट और सज्जनों को प्रिय होता है।

द्वितीय पंक्ति में कूटनीति और राजनीति को परिभाषित करते हुये कहा है कि—**जो स्वयं के जीवन में सुख दे, किन्तु उससे अन्य लोगों को दुःख हो न हो इससे कोई प्रयोजन नहीं, वह राजनीति अथवा कूटनीति कहलाती है।** यह ज्ञान दुष्ट, अशिष्ट और दुर्जनों को प्रिय होता है॥3॥

अब यहाँ पर नीतिमान पुरुषों के 18 बहिरंग लक्षणों को कहते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

सारल्ल-कारुण्ण-संतो तहेव, संतुट्ठदा णिब्भयदा तहेव।
गंभीर-सच्चं तहेव धिज्जं, कत्तव्व-णिट्ठो विणयो मिदुत्तं॥4॥

(उपजाति)

आसत्ति-हीणो सग-सासगो वा, पामाणिगत्तं च खमागुणो वा।
पंडिच्च-पीयूस-वयं च मोणं, सुणीदिमंतस्स सुचिण्हमेदं॥5॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**सारल्ल-कारुण्ण-संतो तहेव**) सरलता, करुणा तथा शान्तभाव, (**संतुट्ठदा**) संतुष्टता (**तहेव**) तथा (**णिब्भयदा**) निर्भयता, (**गंभीर-सच्चं**) गंभीरता, सत्य (**तहेव**) तथा (**धिज्जं**) धैर्य, (**कत्तव्वणिट्ठो**) कर्तव्यनिष्ठ, (**विणयो मिदुत्तं**) विनय, मृदुता, (**आसत्तिहीणो**) आसक्तिहीन (**वा**) और (**सग-सासगो**) स्वशासन करनेवाला, (**पामाणिगत्तं च खमागुणो**) प्रामाणिकता और क्षमागुण (**वा**) और (**पंडिच्च-पीयूस-वयं च**) पांडित्य तथा मधुरवचन (**च मोणं**) एवं मौन; (**एदं सुचिण्हं सुणीदिमंतस्स**) ये समीचीन नीतिमान पुरुष के बहिरंग चिह्न हैं॥**4-5॥**

भावार्थ—यहाँ पर दो श्लोकों के द्वारा नीतिज्ञ पुरुष के 18 लक्षण कहे गये हैं। जिसके अंदर **सरलता, करुणा, शान्तता, संतुष्टता, धीरता, गंभीरता, निर्भयता, सत्यता, कर्तव्यनिष्ठा, विनय, मृदुता, अनासक्ति, स्वशासन, प्रामाणिकता, क्षमाशीलता, पांडित्य, मधुरभाषण और मौन;** ये 18 दुर्लभ सद्गुण एक साथ प्राप्त हों, वो ही नीतिमान होता है॥**4-5॥**

यहाँ पर अब बुद्धिमान पुरुषों के चार विशेष गुणों कहते हैं—

(उपजाति)

भूदत्थ-वादित्त-मवि त्ति णिच्चं, पसण्ण-चित्तस्स तहेव सत्ता।
पच्चुप्पणा वा पडिभा य धीमं, णाणीजणाणं सुविसेस-विज्जा॥6॥

अन्वयार्थ—**(णिच्चं)** हमेशा **(भूदत्थ-वादित्तं)** सत्यवादिता **(तहेव)** और **(पसण्ण-चित्तस्स सत्ता)** प्रसन्नचित्त की सत्ता अर्थात् सद्भाव **(वा)** और **(पच्चुप्पणा पडिभा)** प्रत्युत्पन्न-प्रत्युत्वपन्नमति प्रतिभा **(य)** और **(धीमं अवि)** समझदारी भी होना; **(त्ति)** इस प्रकार ये **(णाणीजणाणं)** ज्ञानीजनों के **(सुविसेस-विज्जा)** विशेष गुण हैं॥6॥

भावार्थ—यहाँ बुद्धिसंपन्न पुरुष के चार विशेष गुणों की चर्चा करते हुये कहा गया है—सदा ही ''**प्रसन्नचित्त रहना**'' अर्थात् **खुशमिज़ाज़ी** का जीवन जीना; ''**प्रज्ञावंत/धीमंत होना**'' अर्थात् हर कार्य को सूझ-बूझ समझदारी से पूर्वापर का विचार करके करना; ''**सत्यवादिता होना**'' अर्थात् हर परिस्थिति में सत्यवचनों को ही कहना, असत्य से दूर रहना तथा ''**प्रत्युत्पन्नमति होना**'' अर्थात् ''**हाज़िरजवाबी होना**'' किसी के भी प्रश्नों का उत्तर तुरन्त और सही-सही देना; ये बुद्धिमान पुरुषों के चार विशेष गुण अथवा चिह्न जानना चाहिये॥6॥

अब यहाँ बता रहे हैं कौन-कौन क्या-क्या चाहता है? अथवा किसको किस वस्तु की चाह होती है?

(इन्द्रवज्रा)

भंभो विणं सव्वधणं णरेसो, इत्थी पसंसं कलहं च णीचो।
णेहं अपच्चो सुहिदो च अट्ठं, साहू पसंतिं सददं पिहेदि॥7॥

अन्वयार्थ—**(भंभो विणं सददं पिहेदि)** मक्खी हमेशा घाव को चाहती है, **(णरेसो सव्वधणं)** राजा हमेशा सर्वविधधन को चाहता है, **(इत्थी पसंसं)** स्त्रियाँ निरंतर प्रशंसा को चाहती हैं **(च)** और **(णीचो कलहं)** अधम (नीच) पुरुष हमेशा कलह चाहता है, **(अपच्चो णेहं)** संतान हमेशा स्नेह चाहती है, **(सुहिदो अट्ठं)** मित्र हमेशा विश्वास चाहता है **(च)** और **(साहू पसंतिं)** साधुजन निरंतर प्रशान्ति (शान्ति) ही चाहते हैं॥7॥

भावार्थ—यहाँ भिन्न-भिन्न जीवों को किन-किन वस्तुओं की चाह रहती है इन बातों को बतलाते हुये कहा गया है कि—**मक्खी सदा ही घाव/वृण की चाह रखती है, राजा सदा ही सम्पूर्ण सम्पत्ति और धन की चाह रखता है, स्त्रीवर्ग सदा ही स्व-प्रशंसा की चाह रखती है, अधम और निकृष्ट पुरुष हमेशा ही कलह की चाह रखते हैं, संतान (पुत्र-पुत्री) हमेशा स्नेह और प्रीति की चाह रखते हैं, मित्र हमेशा विश्वास की चाह रखता है और साधु जन निरंतर शान्ति (शान्त वातावरण) की चाह रखते हैं॥7॥**

अब यहाँ धन का लाभ कैसे होता है? इस अर्थ विषयक नीति को बतलाते हैं—

(उपजाति)

आसीसदो सग्गुरुणो अजस्सं, उज्जोगदो वंस-परंपराए।
इट्ठस्स मित्तस्स सुजोगदो वा, पचंड-पुण्णेण धणस्स लद्धी॥8॥

अन्वयार्थ—**(आसीसदो सग्गुरुणो)** सद्गुरुओं के मंगल-शुभाशीष से, **(अजस्सं उज्जोगदो)** अविरल/निरंतर उद्योग से, **(वंस-परंपराए)** कुल या जाति की वंश परंपरा से, **(इट्ठस्स मित्तस्स सुजोगदो)** इष्ट-मित्र के सुयोग से, **(वा)** अथवा **(पचंड-पुण्णेण)** प्रचण्ड पुण्य के द्वारा **(धणस्स लद्धी होदि)** धन की लब्धि अर्थात् प्राप्ति होती है॥8॥

भावार्थ—यहाँ मनुष्य जीवन में धन-सम्पत्ति-वैभव की प्राप्ति कैसे होती है, इस बात को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—धनप्राप्ति के मूल और प्रसिद्ध 5 उपाय हैं। **1. सद्गुरुओं के शुभ-मंगलाशीर्वाद के माध्यम से, 2. निरंतर एक दिशा में परिश्रम के माध्यम से, 3. पिता के कुल अथवा माता के पक्ष की वंश-परंपरा के माध्यम से, 4. इष्ट-मित्रों के सहयोग के माध्यम से, 5. प्रबल-प्रचण्ड पुण्योदय के माध्यम से इस लोक में जीव को धनादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है॥8॥**

अब यहाँ क्या-क्या पुनः-पुनः विचार करने योग्य है, उसे बतलाते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

आयो वयो वा कदि चेव को हं, किण्णं च कालो सुहिदो य को को।
अप्पस्स किं किं च पुणो किदो मे, किण्णं च देसं इदि चिंतणिज्जं॥9॥

अन्वयार्थ—**(आयो वयो वा कदि)** आय कितनी और व्यय कितना है? **(चेव)** और **(को हं)** मैं कौन हूँ? **(किण्णं च कालो)** और कौन-सा समय है? **(सुहिदो य को को)** और कौन-कौन मित्र है? **(च)** और **(अप्पस्स किं किं किदो मे)** अपने लिये मेरे द्वारा क्या-क्या किया गया है? **(किण्णं च देसं)** और कौन-सा देश है? **(इदि)** इस प्रकार **(पुणो चिंतणिज्जं)** पुनः पुनः विचार करते रहना चाहिये॥9॥

भावार्थ—यहाँ बताया गया है कि पुनः-पुनः बार-बार क्या-क्या चिंतन करना चाहिये। **मेरी आय और व्यय कितनी है? मैं कौन हूँ? कौन-सा समय चल रहा है? कौन-सा देश है? कौन-कौन मित्र है? तथा मैंने अपने लिये इस जीवन में क्या-क्या किया है?** इन छह बातों को जितना हो सके उतनी बार पुनः पुनः विचार करते रहना चाहिये॥9॥

अब यहाँ दो श्लोकों में कौन किसको नष्ट कर देता है, इसका वर्णन बतलाते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

रूवं जरा सेट्ठु-धिदिं च आसा, कोहो सुकंतिं च सिरिं गलेदि।
मिच्चू य पाणं मदणं च लज्जं, माणं पुणो सव्व-गुणा गलेदि॥10॥

(उपजाति)

कुलं कुपुत्तो समणं च गंथो, रायं कुमंतं विउलो पवासो।
णेहं तहा सव्व-धणं पमादो, दुट्ठाण मित्ती मलहीण-सीलं॥11॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(रूवं जरा)** जरा/वृद्धत्व रूप को, **(च)** और **(आसा सेट्ठु-धिदिं)** आशा श्रेष्ठ धैर्य को, **(च)** और **(कोहो सुकंतिं सिरिं)** क्रोध कान्ति और लक्ष्मी को, **(य)** और **(मिच्चू पाणं)** मृत्यु प्राण को, **(च)** और **(मदणं लज्जं)** काम लज्जा को, **(कुलं कुपत्तो)** कुपुत्र कुल को, **(च)** और **(गंथा समणं)** परिग्रह श्रमण को, **(कुमंतं रायं)** दुर्मन्त्र राजा को **(विउलो पवासो णेहं)** अधिक प्रवास स्नेह को, **(पमादो सव्वधणं)** प्रमाद सम्पूर्ण धन को, **(तहा)** तथा **(दुट्ठाण मित्ती मलहीण-सीलं)** दुष्टजनों की मैत्री निर्मल-शील को **(गलेदि)** नष्ट कर देती है, **(पुणो)** किन्तु **(माणं सव्वगुणा गलेदि)** मान सम्पूर्ण गुणों को नष्ट कर देता है॥10-11॥

भावार्थ—कौन किसके विनाश का कारण बनता है; इन श्लोकों में इस

बात को दर्शाते हुये कहा गया कि—**जरा अर्थात् बुढ़ापा सुन्दर रूप को** नष्ट कर देता है, **कितना ही श्रेष्ठ धैर्य हो उसे इच्छायें** नष्ट कर लेती हैं, **क्रोध अथवा कुपित स्वभाव देह की कान्ति और लक्ष्मी/सम्पदा को** नष्ट कर देता है, **मृत्यु अर्थात् अंतसमय प्राणों को** समाप्त कर देता है, **काम अर्थात् वासना लज्जा को** नष्ट कर देता है, **कुपुत्र अर्थात् अमर्यादित संतान कुल को** नष्ट कर देती है, **परिग्रहासक्ति साधुओं** को नष्ट कर देती है, **दुर्मन्त्र अर्थात् विपरीत अयोग्य सलाह राजा को** नष्ट कर देती है, **सीमा से अधिक निवास और प्रवास करने से पारस्परिक प्रीति/स्नेह** समाप्त हो जाता है, **आलस्य और प्रमाद संग्रहीत सर्वविध धन-सम्पदा** को नष्ट कर देता है, **दुष्टजनों की मैत्री अर्थात् दुर्जनों की संगति निर्मल शीलधर्म को** नष्ट कर देती है; किन्तु **मान एक ऐसी वस्तु है जो सम्पूर्ण गुणों को ही नष्ट कर देती है॥10-11॥**

और भी अच्छा.....

जिससे
आपको खुशी मिले
ऐसे काम अच्छे हैं,
जिससे दूसरों को भी खुशी मिले
ऐसा काम और भी अच्छा है।

अब यहाँ पर सर्वत्र कीर्ति बढ़ानेवाले आठ गुणों का निरूपण करते हैं—

(उपजाति)

ससत्तिदाणं च किदत्थदा य, परक्कमो इंदियसंजमो य।
बुद्धी कुलीणत्त-सुगंथणाणं, वड्ढंति कित्तिं मिदभासणं च॥12॥

अन्वयार्थ—(**स-सत्तिदाणं**) स्वशक्ति से दान (**च**) और (**किदत्थदा**) कृतार्थता (**य**) और (**परक्कमो**) पराक्रम, (**इंदियसंजमो**) इन्द्रिय संयम (**य**) और (**बुद्धी**) बुद्धि, (**कुलीणत्त-सुगंथणाणं**) कुलीनता, सम्यग् ग्रंथों का शास्त्रज्ञान (**च**) और (**मिदभासणं**) मितभाषण अर्थात् अधिक न बोलना, ये (**कित्तिं वड्ढंति**) गुण कीर्ति को बढ़ाते हैं।।12।।

भावार्थ—कीर्ति बढ़ानेवाले गुण कौन-कौन से हैं, इस बात को बताते हुये यहाँ कहा गया कि—आठ विशेष गुणों के द्वारा जीव की कीर्ति सर्वत्र बढ़ती है। **1. स्वशक्ति से दान करना, 2. कृतज्ञता अर्थात् एहसान स्वीकारना, 3. पराक्रमी होना, 4. इन्द्रियों को संयमित करना, 5. प्रखर बुद्धि होना, 6. कुलीनता अर्थात् चारित्रवान होना, 7. ग्रन्थों के ज्ञान की प्राप्ति होना एवं 8. मितभाषण करना अर्थात् कम से कम बोलना॥12॥**

अब यहाँ पर जीवों के भिन्न-भिन्न प्रकार के धनों की चर्चा करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

णिच्चं धणं अद्धधणं हवेदि, धण्णं पुणो होदि महाधणं च।
पुज्जं धणं वा तवकित्ति-विज्जा, णिग्गंथ-भावो खलु सम्मवित्तं॥13॥

अन्वयार्थ—(**णिच्चं**) सदा ही (**धणं अद्धधणं हवेदि**) धन अर्द्धधन होता है, (**च**) और (**धण्णं महाधणं होदि**) धान्य महाधन होता है, (**तवकित्ति-विज्जा वा**) तप, यशः कीर्ति और विद्या (**पुज्जं धणं**) पूज्यधन है, (**पुणो**) पुनः (**खलु**) निश्चय से (**णिग्गंथ-भावो सम्मवित्तं**) निष्परिग्रहत्व अर्थात् अधन सच्चा धन है।।13।।

भावार्थ—यहाँ पर कहा गया है कि—**धन, सम्पत्ति सब आधा धन है; धान्य महाधन है; विद्या, तप और यशःकीर्ति पूज्य धन/सम्पत्ति है तथा निष्परिग्रहत्व/अधन ही जीव का सच्चा धन है॥13॥**

अब यहाँ पर संसार में क्या-क्या दुर्लभ है, उसकी व्याख्या करते हैं—

(उपजाति)

मित्ती अहेदू अमदं पहुत्तं, णाणं अलब्भं सहवेहवं पि।
सुदुल्लहा सव्वपिया सुवाणी, अंतं भवे आउ-कलंकहीणो॥14॥

अन्वयार्थ—**(भवे)** संसार में **(अहेदू मित्ती)** कारण रहित मैत्री, **(अमदं पहुत्तं)** मद रहित प्रभुत्व, **(सहवेहवं णाणं अलब्भं)** वैभव सहित ज्ञान दुर्लभ है, **(अंतं आउ-कलंकहीणो)** अंत तक कलंक रहित आयु और **(सव्वपिया सुवाणी सुदुल्लहा पि)** सभी को प्रिय लगनेवाली श्रेष्ठ वाणी भी बहुत दुर्लभ है॥14॥

भावार्थ—इस श्लोक में संसार में अप्राप्य और दुर्लभ क्या-क्या है, इसको दर्शाते हुये कहा गया कि—**कारण रहित मित्रता, अहंकार रहित स्वामित्व और प्रभुत्व, वैभव और सम्पदा युक्त ज्ञान, जीवन के अंत तक कलंक रहित आयु और सर्वजन को प्रिय लगनेवाली श्रेष्ठ, सुन्दर और मधुर वाणी बहुत-बहुत दुर्लभ है॥14॥**

अब यहाँ सर्वत्र यशःकीर्ति अथवा प्रशंसा का पात्र कौन होता है, इसको बतलाते हैं—

(उपजाति)

अण्णस्स दोसं णवि पेक्खदे जो, सव्वेसु जीवेसु दयं करेदि।
विवेगसीलो ण कुणे विवादं, दुक्खाणि धिज्जेण सहेदि णिच्चं॥15॥

धम्मादि-कज्जाणि ण रंभए जो, कोहेण मित्तेण वि णेव जुज्झे।
अणादरे णेव हवेदि कुद्धो, सव्वत्थ सो सो जसकित्ति-पत्तो॥16॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**अण्णस्स दोसं णवि पेक्खदे**) दूसरों के दोष नहीं देखता, (**सव्वेसु जीवेसु दयं करेदि**) सभी जीवों पर दया करता है, (**विवेगसीलो**) विवेक नहीं खोता, (**विवादं ण कुणे**) विवाद नहीं करता, (**धिज्जेण दुक्खाणि णिच्चं सहेदि**) धैर्यपूर्वक दुःखों को नित्य ही सहन करता है; (**जो कोहेण**) जो क्रोध के साथ (**धम्मादि-कज्जाणि ण रंभए**) धर्म, अर्थ तथा काम को आरंभ नहीं करता, (**मित्तेण णेव जुज्झे**) मित्र के साथ झगड़ा नहीं करता (**वि**) और (**अणादरे कुद्धो णेव हवेदि**) अनादर होने पर क्रुद्ध नहीं होता; (**सो सो सव्वत्थ जसकित्ति-पत्तो**) वो वो ही सर्वत्र यशःकीर्ति का पात्र है॥15-16॥

भावार्थ—यहाँ पर प्रशंसा अथवा यशःकीर्ति प्राप्त करनेवाले मनुष्यों के 8 लक्षण बताये गये हैं। **1. दूसरों के दोष नहीं देखना, 2. सभी जीवों पर**

दया करना, 3. किसी भी परिस्थिति में अपना विवेक नहीं खोना, 4. विवाद नहीं करना, 5. कर्म जनित दुःखों को हमेशा धैर्यपूर्वक सहन करना, 6. क्रोध के साथ धर्म, अर्थ और काम का आरंभ नहीं करना, 7. अपने मित्र के साथ कभी भी झगड़ा नहीं करना और 8. अनादर होने पर क्रुद्ध नहीं होना अर्थात् कुपित नहीं होना; जो मनुष्य ऐसे गुणों को प्राप्त कर लेता है, वह सभी जगह प्रशंसा पाता है॥15-16॥

नहीं उड़ पाता है.....

एक पंछी ने मुझसे पूछा-
इंसान हमारी तरह
क्यों नहीं उड़ पाते हैं?
मैंने कहा-
तुम उड़ते हो
पर जमीन को नहीं भूलते,
मगर इंसान
उड़ते ही जमीन को भूल जाता है;
इसलिये
नहीं उड़ पाता है।

अब यहाँ बता रहे हैं कि किस मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता अथवा किस मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं होता—

(उपजाति)

रागी-पहुं वा विसई-गुरुं च, सपावधम्मं च दया-विहूणं।
पमत्त-वेज्जं णिव-आसुकारिं, मंतिं अबोहं कुलडं कलत्तं॥17॥

पुत्तं कुसीलं कुलणासगं च, णरो य वेरी-मिलिदं च मित्तं।
मोहेण से णेव विमुंचएदि, जीवस्स कल्लाण-सुहं ण होदि॥18॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**णरो**) जो मनुष्य (**रागी-पहुं**) रागी-प्रभु को (**वा**) अथवा (**विसई-गुरुं**) विषयी-गुरु को (**च**) और (**दया-विहूणं सपावधम्मं च**) दया रहित और पाप सहित धर्म को, (**पमत्त-वेज्जं**) प्रमादी-वैद्य को, (**णिव-आसुकारिं य**) और उतावली करनेवाले राजा को (**अबोहं मंतिं**) अबोध-मंत्री को, (**कुलडं कलत्तं**) कुलटा-स्त्री को, (**कुसीलं कुलणासगं च पुत्तं**) कुशील और कुलनाशक संतान को (**च**) और (**वेरी-मिलिदं मित्तं**) शत्रु से मिले हुये मित्र को (**मोहेण णेव विमुंचएदि**) मोह के कारण नहीं छोड़ता है; (**से जीवस्स**) उस जीव का (**कल्लाण-सुहं ण होदि**) कल्याण और शुभ नहीं होता॥**17-18**॥

भावार्थ—किस मनुष्य का कल्याण नहीं होता और किस मनुष्य को सुख की प्राप्ति नहीं होती इस भाव को प्रकट करते हुये यहाँ दो श्लोकों के माध्यम से कहा गया है कि—**जो मानव जन्म प्राप्त करके मोह के वशीभूत होकर सरागी प्रभु या परमात्मा को, विषयासक्त गुरु को, दया रहित और पाप**

सहित कुधर्म को, प्रमाद करनेवाले आलसी वैद्य को, उतावली करनेवाले राजा को अर्थात् भड़भड़ी में निर्णय लेनेवाले राजा को, बोध और ज्ञान रहित मूर्ख मंत्री को, चारित्रहीन परपुरुषासक्त स्त्री को, व्यसनी और कुलविनाशक संतान को और शत्रुपक्ष से मिले हुये घनिष्ठ मित्र को नहीं छोड़ता, उस जीव का कभी मंगल नहीं होता और उस जीव को कभी सुख की प्राप्ति नहीं होती॥17-18॥

जीवन का उद्देश्य.....

इस जीवन का उद्देश्य-
कीर्ति नहीं,
धन नहीं,
सुख नहीं,
दुःख नहीं,
ज्ञान नहीं,
चिंतन भी नहीं,
जीवन का उद्देश्य
स्वयं का 'जीवन' है।

अब यहाँ पर किसका विनाश शीघ्र ही हो जाता है? इसका व्याख्यान करते हैं—

(उपजाति)

सदोस-संगं अबले वि जुद्धं, भुंजेदि सव्वं हविदूण रोगी।
करेदि आयादु अहिगं वयं जो, सिग्घं विणस्सेदि णरो स णिच्चं॥19॥

अन्वयार्थ—**(जो णरो णिच्चं)** जो मनुष्य हमेशा **(सदोस-संगं)** दोष युक्त संगति **(करेदि)** करता है, **(अबले वि जुद्धं करेदि)** बलहीन होकर भी युद्ध करता है, **(आयादु अहिगं वयं करेदि)** आय से अधिक व्यय करता है और **(रोगी हविदूण)** रोगी होकर भी **(सव्वं भुंजेदि)** सब कुछ खाता है; **(स)** वह मनुष्य **(सिग्घं विणस्सेदि)** शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है॥19॥

भावार्थ—इस श्लोक में स्वरक्षा हेतु कुछ विशेष विचारों की चर्चा की गई है। **जो मनुष्य हमेशा खोटी संगति करता है, दोष युक्त लोगों के साथ रहता है; वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो शक्ति रहित होते हुये भी कलह/युद्ध करता है और देखा-देखी करके आमदनी से अधिक खर्च करता है; वह भी शीघ्र नष्ट हो जाता है तथा जो मनुष्य बीमार होकर परहेज नहीं करता, सब कुछ खाता रहता है; वह मनुष्य भी शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है।** अस्तु जिसे भी अपनी रक्षा करना हो, वो इन बातों का ध्यान अवश्य रखे॥19॥

अब यहाँ कह रहे हैं कि किस प्रवृत्ति के मनुष्य को कैसे वश कर सकते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

लुद्धं धणेणं विणया मदंधं, सत्तीय सुद्दं असणेण विप्पं।
इट्ठेण कज्जेण सया विमूढं, माणेण वम्मं हि वसे करिज्जा॥20॥

अन्वयार्थ—**(लुद्धं धणेणं)** लुब्ध अर्थात् लोभी को धन से, **(मद-अंधं विणया)** मद से अंधे हुये को विनय से, **(सुद्दं सत्तीय)** शक्ति से शूद्र को, **(विप्पं असणेण)** विप्र अर्थात् ब्राह्मण को भोजन से, **(विमूढं इट्ठेण कज्जेण)** मूर्ख को उसके इष्ट कार्य से और **(वम्मं माणेण)** वर्मन् अर्थात् क्षत्रिय को मान से **(सया हि)** सदा ही **(वसे करिज्जा)** वश में किया जा सकता है॥20॥

भावार्थ—इस श्लोक में संक्षेप से बताया गया है कि—किस मनुष्य को किस प्रकार से आप वश में कर सकते हैं। **जो लोभी-लालची हो, उसे धन के द्वारा वश करें; जो अहंकारी हो, उसे आदर और विनय के द्वारा वश करें; जो शूद्र प्रवृत्ति का हो, उसे शक्ति और बल के द्वारा वश करें; जो पंडित और ब्राह्मण हो, उसे स्वादिष्ट भोजन के द्वारा वश करें; जो मूर्ख और मंद बुद्धि वाला हो, उसे उसके इच्छानुकूल कार्य के माध्यम से वश करें और क्षत्रियों को सम्मान देकर सदा ही वश करें। इसके अलावा बच्चों को प्रेम और स्नेह से और स्त्रीवर्ग को प्रशंसा करके वश में किया जा सकता है॥20॥**

अब यहाँ किससे किसकी रक्षा संभव है? इस बात को बतलाते हैं—

(उपजाति)

कुलस्स धम्मायरणेण रक्खा, सच्छेण रूवस्स हवेदि रक्खा।
जोगेण विज्जाय हवेदि रक्खा, सच्चेण धम्मस्स हवेदि रक्खा॥21॥

अन्वयार्थ—(**कुलस्स धम्म-आयरणेण**) कुल की धर्माचरण से (**रक्खा हवेदि**) रक्षा होती है, (**रूवस्स सच्छेण**) सुंदर रूप की स्वच्छता से (**रक्खा हवेदि**) रक्षा होती है, (**विज्जाय जोगेण**) विद्या की योग से (**रक्खा हवेदि**) रक्षा होती है और (**धम्मस्स सच्चेण**) धर्म की सत्य से (**रक्खा हवेदि**) रक्षा होती है॥21॥

भावार्थ—इस श्लोक में कुल, रूप, विद्या और धर्म की रक्षा के सम्यगुपाय बताये गये हैं। **उच्च कुल की रक्षा हमेशा सदाचार अथवा धर्मानुकूल आचरण से ही संभव है, सुंदर रूप की रक्षा हमेशा स्वच्छता और सफाई से ही संभव है, विद्या की रक्षा योग अर्थात् अभ्यास से ही संभव है और सनातन अहिंसा धर्म की रक्षा सत्यनिष्ठा से ही संभव है॥21॥**

अब यहाँ बता रहे हैं कि किस क्रिया से किस-किस की वृद्धि होती है—

(इन्द्रवज्रा)

वड्ढेदि मेत्ती पिय-भासणेण, दाणेण कित्ती विणएण सत्ती।
अब्भासदो सोक्खकरी सुविज्जा, वीसे पहुत्तं च उदारदाए॥22॥

वड्ढेदि सम्मायरणेण अट्ठा, णाएण रज्जो य समेण लच्छी।
लोहेण पावं च तवो खमाए, सिंगारभावा अणुराग-वड्ढी॥23॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(पिय-भासणेण मेत्ती वड्ढेदि)** प्रिय भाषण से मैत्री बढ़ती है, **(दाणेण कित्ती)** दान से कीर्ति, **(विणएण सत्ती)** विनय से शक्ति अर्थात् योग्यता, **(अब्भासदो सोक्खकरी सुविज्जा)** अभ्यास से सौख्यकारिणी सद्विद्या **(च)** और **(उदारदाए)** उदारता से **(वीसे पहुत्तं वड्ढेदि)** विश्व में प्रभुत्व बढ़ता है।

(सम्म-आयरणेण अट्ठा) सम्यक् आचरण से आस्था और विश्वास, **(णाएण-रज्जो)** न्याय से राज्य **(य)** और **(समेण लच्छी)** श्रम से लक्ष्मी, **(लोहेण पावं)** लोभ से पाप, **(खमाए तवो)** क्षमा से तप **(च)** और **(सिंगारभावा अणुराग-वड्ढी)** शृंगार से अनुराग की वृद्धि होती है॥22-23॥

भावार्थ—यहाँ पर मैत्री, कीर्ति, योग्यता, राज्य, लक्ष्मी आदि की

अभिवृद्धि और बढ़ोत्तरी के कारणों को बतलाते हुये लिखा है कि **मधुर-प्रिय वचनों के प्रयोग से मैत्री बढ़ती है, दान करने से यशःकीर्ति बढ़ती है, विनय करने से शक्ति और पात्रता अथवा योग्यता बढ़ती है, निरंतर अभ्यास करने से सुख देने वाली सम्यक् विद्या का विस्तार होता है, उदारमनः होने से सम्पूर्ण विश्व में प्रभुत्व बढ़ता है, सत्य-आचरण अर्थात् सदाचारता से विश्वास बढ़ता है, न्याय-प्रियता होने से राजा का राज्य बढ़ता है, निरंतर उद्यम/परिश्रम करने से लक्ष्मी बढ़ती है, लोभ करने से पाप बढ़ता है, क्षमाभाव रखने से तप बढ़ता है और शृंगार करने से अनुराग और वासना बढ़ती है॥22-23॥**

जानने का फल.....

सब कुछ जानना,
परन्तु
कुछ भी न करना;
यही
जानने का सच्चा फल है।

अब यहाँ कहा जा रहा है कि किन-किन से हमेशा सावधान रहना चाहिये—

(उपजाति)

उम्मत्त-णागा तह कुद्ध-सप्पा, अतित्त-सिंहा हयबुद्धि-भिच्चा।
मदंध-दुट्ठा अरि-वेज्जदो वा, भट्ठा कलत्ता सइ संभलेज्जा॥24॥

अन्वयार्थ—**(उम्मत्त-णागा)** उन्मत्त हाथी से, **(कुद्ध-सप्पा)** क्रुद्ध सर्प से **(तह)** तथा **(अतित्त-सिंहा)** अतृप्त सिंह से, **(हयबुद्धि-भिच्चा)** हतबुद्धि अर्थात् मूर्ख भृत्य से, **(मद-अंध-दुट्ठा वा)** मद में अंधे हुये पुरुषों से तथा दुष्ट पुरुषों से, **(अरिवेज्जदो)** अरि अर्थात् शत्रु से, वैद्य से और **(भट्ठा कलत्ता)** भ्रष्ट स्त्री से **(सइ संभलेज्जा)** सदा ही सावधान रहना चाहिये॥24॥

भावार्थ—किन-किन जीवों से हमेशा सावधान रहना चाहिये; इस नीति का व्याख्यान करते हुये यहाँ कहा गया कि 9 प्रकार के जीवों से हमेशा सावधान रहें। **1. उन्मत्त अर्थात् पागल हाथी से, 2. कुपित हुये साँप से, 3. अतृप्त अर्थात् भूखे सिंह से, 4. विवेकज्ञान रहित मूर्ख नौकर से, 5. मद में अंधे अहंकारी से, 6. दुष्ट-शरारती लोगों से, 7. शत्रुता रखनेवाले लोगों से, 8. वैद्य से और 9. भ्रष्ट अर्थात् व्यसनासक्त व्यभिचारिणी स्त्री से हमेशा सावधान रहना चाहिये॥24॥**

अब यहाँ बतलाया जा रहा है कि किस प्रकार के लोगों को अपने घर में निवास नहीं करने देना चाहिये—

(उपजाति)

सव्वेहि वेरिं बहुभक्खिजीवं, मायावि-कूरं च कुवेसधारिं।
अबोह-देसावहि-धम्म-जीवं, कदा ण ठाएज्ज णरं सगेहे॥25॥

अन्वयार्थ—(**सव्वहि वेरिं णरं**) सभी के साथ वैर रखनेवाले मनुष्य को, (**बहुभक्खि-जीवं**) बहुत खानेवाले मनुष्य को, (**मायावि-कूरं**) अधिक मायावी, क्रूर प्रकृति वाले को, (**कुवेसधारिं**) निंदित वेश धारण करनेवाले को (**च**) और (**अबोहदेस-अवहि-धम्म-जीवं**) देश, काल और धर्म का ज्ञान न रखनेवाले जीव को (**कदा सगेहे**) कभी अपने घर में (**ण ठाएज्ज**) न ठहरने दें॥25॥

भावार्थ—अपने घर में किसे स्थान नहीं देना चाहिये इस नीति को बतलाते हुये इस श्लोक में कहा गया कि 6 प्रकार के लोगों को अपने घर में ठहरने न दें। **1. जो व्यक्ति सभी जन के साथ वैर का भाव रखता हो, 2. बहुत खानेवाला हो, 3. प्रचुर मायाचारी करनेवाला हो, 4. क्रूर (निर्दयी) प्रकृति का हो, 5. निंदित वेश अर्थात् अभद्र वस्त्रादि को धारण करनेवाला हो और 6. जिसे देश, काल और धर्म का बोध/ज्ञान न हो; उस जीव को अपने घर में ठहरने नहीं देना चाहिये॥25॥**

अब यहाँ भव्यजीवों को नीति वाक्यों का, नीति के रहस्यों का सम्बोधन दिया जा रहा है—

(उपजाति)

किं चेव लोहो जदि दुग्गुणाणं, किं चेव कोहो जदि वा अरीणं।
मणो विसुद्धो य पवित्तठाणं, किं दुज्जणा वा जदि पण्णगाणं॥26॥

णिद्दोस-विज्जा जदि किं धणस्स, खमा पुणो किं जदि जागरस्स।
पेसुण्ण-भावो जदि अण्णपावं, आवस्सगत्तं जदि भव्वजीव!॥27॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**भव्वजीव!**) हे भव्यजीव! (**जदि लोहो**) यदि लोभ है (**दुग्गुणाणं चेव किं आवस्सगत्तं**) तो और दुर्गुणों की क्या आवश्यकता? (**जदि वा कोहो**) अथवा यदि क्रोध है (**चेव अरीणं किं आवस्सगत्तं**) तो फिर शत्रुओं की क्या आवश्यकता? (**य जदि**) और यदि (**मणो विसुद्धो**) मन विशुद्ध है तो (**पवित्तठाणं किं आवस्सगत्तं**) पवित्रस्थान और तीर्थों की क्या आवश्यकता? (**जदि वा दुज्जणा**) अथवा यदि दुर्जन हैं (**पण्णगाणं किं आवस्सगत्तं**) तो फिर सर्पों की क्या आवश्यकता? (**जदि णिद्दोस-विज्जा**) यदि निर्दोष-विद्या है तो (**धणस्स किं आवस्सगत्तं**) धन की क्या आवश्यकता? (**जदि खमा**) यदि क्षमा-भाव है तो (**जागरस्स किं आवस्सगत्तं**) कवच की क्या आवश्यकता? (**पुणो जदि**) पुनः यदि (**पेसुण्ण-भावो**) चुगलखोरी या पैशून्यता है तो (**अण्णपावं किं आवस्सगत्तं**) अन्य पापों की क्या आवश्यकता?॥**26-27**॥

भावार्थ—यहाँ भव्यजीवों को नीति का रहस्य समझाते हुये कहा गया कि—हे भव्यजीव! **यदि तुम्हारे पास लोभ है तो और दुर्गुणों की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् लोभरूपी दुर्गुण आपके विनाश के लिये पर्याप्त है। **यदि तुम्हारे पास क्रोध है तो फिर शत्रुओं की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् क्रोध ही आपके जीवन का सबसे बलशाली शत्रु है। **यदि तुम्हारा मन विशुद्ध और पवित्र है तो फिर पवित्रस्थानों की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् मन की पवित्रता से श्रेष्ठ कोई और तीर्थस्थान नहीं है। **यदि तुम्हारे पास दुर्जन लोग हैं तो फिर सर्पों की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् दुर्जनों से बड़ा विषधारी/जहरीला कोई और नहीं है। **यदि निर्दोष विद्या तुम्हारे पास है तो फिर धन-संपत्ति की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् निर्दोष-विद्या से बड़ी कोई संपत्ति नहीं है। **यदि क्षमा का भाव तुम्हारे पास है तो फिर किसी भी प्रकार के कवच की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् स्वात्मा की रक्षा के लिये क्षमाभाव से श्रेष्ठ/उत्तम कोई और कवच ही नहीं है और **यदि तुम्हारे पास चुगलखोरी का अवगुण है तो फिर अन्य किसी भी पाप की क्या आवश्यकता है?** अर्थात् चुगलखोरी से बढ़कर कोई और पाप नहीं है॥**26-27**॥

अब यहाँ बता रहे हैं कि किन-किन बातों को नीतिमान पुरुषों के लिये गुप्त रखना चाहिये—

(उपजाति)

सगस्स आउं सग-गेहभेदं, सगस्स वित्तं अवमाण-दाणं।
मंतं पुणो ओसह-मेहुणं च, जदेण गूहेदु सया तवस्सं॥28॥

अन्वयार्थ—**(सगस्स आउं)** स्वयं की आयु को, **(सग-गेहभेदं)** स्वगृह के भेद को, **(सगस्स वित्तं अवमाण-दाणं)** स्वयं के धन को, अपमान को और स्वकृत दान को, **(पुणो)** पुनः **(मंतं)** मन्त्र को, **(ओसह-मेहुणं च)** औषध और मैथुन को तथा **(तवस्सं)** तपस्या को **(सया जदेण)** हमेशा यत्नपूर्वक **(गूहेदु)** गुप्त रखना चाहिये॥28॥

भावार्थ—यहाँ बताया गया है कि नौ बातों को प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये, किसी को भी नहीं बताना चाहिये। **1. अपनी आयु को, 2. अपने घर के भेद को, 3. अपने धन/संपत्ति को, 4. किसी के द्वारा किये गये स्वयं के अपमान को, 5. स्वयं के द्वारा किये गये दान को, 6. मन्त्रों को, 7. औषधि को, 8. मैथुन क्रिया को और 9. स्वकृत-तपस्या को;** इन सभी बातों को पूर्ण प्रयत्न से छिपाकर गुप्त रखना चाहिये॥28॥

अब यहाँ बता रहे हैं कि किस कारण से बुद्धि, लज्जा, श्री, शांति और कीर्ति आपको छोड़कर चली जाती है—

(उपजाति)

किंचण्ण मं दिंतहि एस वक्कं, मुहादु जीवस्स य णिग्गमे अं।
सुबुद्धि-लज्जा-सिरि-संति-कित्ती, देहादु णिज्जित्तु अवक्कमेदि॥29॥

अन्वयार्थ—**(मं किंचण्ण दिंतहि)** "मुझे कुछ दे दो"; **(जीवस्स मुहादु एस वक्कं णिग्गमे)** जीव के मुख से यह वचन निकलने पर **(अं य)** शीघ्र ही **(देहादु)** इस देह से **(सुबुद्धि-लज्जा-सिरि-संति-कित्ती)** सद्बुद्धि, लज्जा, श्री, शान्ति और कीर्ति **(णिज्जित्तु)** निकलकर **(अवक्क-मेदि)** चली जाती है॥29॥

भावार्थ—याचना सैकड़ों गुणों को हर लेती है; इस नीति को बतलाते हुये यहाँ कहा गया है कि—**"मुझे कुछ दे दो" यह वचन जीव के मुख से निकलते ही मनुष्य के शरीर से शीघ्र ही सद्बुद्धि, लज्जा, श्री (लक्ष्मी), शान्ति और यशःकीर्ति; ये पाँच विशेष गुण निकलकर बहुत दूर चले जाते हैं॥29॥**

अब यहाँ बताया जा रहा है कि–कौन-कौन विद्वज्जनों के स्वाभाविक मित्र हैं?

(उपजाति)

बुद्धी-विवेगो तह सोरयं च, धिज्जं बलं चाउरियं च विज्जा।
णाणीण मित्ताणि इमाणि णिच्चं, करंति ते णेहि तिलोय-कज्जं॥30॥

अन्वयार्थ—**(बुद्धि-विवेगो)** बुद्धि, विवेक, **(तह)** तथा **(सोरयं)** शौर्य, **(धिज्जं बलं च)** धैर्य और बल, **(चाउरियं च विज्जा)** चातुर्य/दक्षता और विद्या; **(इमाणि)** ये **(णाणीण मित्ताणि)** ज्ञानीजनों के मित्र हैं। **(ते)** वे ज्ञानी जन **(तिलोय-कज्जं)** जगत् के कार्य **(णेहि)** इन मित्रों के द्वारा ही **(णिच्चं करंति)** नित्य करते हैं॥30॥

भावार्थ—यहाँ कहा गया है कि नीतिमान विद्वान पुरुषों के सात स्वाभाविक मित्र हुआ करते हैं, जो उनके हर कार्य में सहायता करते हैं अथवा जिनकी सहायता के माध्यम से नीतिमान विद्वज्जन अपने सारे कार्य सरलता से पूर्ण करते हैं। **1. बुद्धि, 2. विवेक अर्थात् हित-अहित की सोच, 3. शौर्य अर्थात् शूर-वीरता, 4. धैर्य, 5. बल अर्थात् शारीरिक बल, 6. चातुर्य अर्थात् हर कार्य को करने में कुशलता/दक्षता और 7. विद्या अर्थात् सर्वविषयों का ज्ञान; ये सात ही नीतिमान के सदाकाल साथ रहनेवाले प्राकृतिक मित्र हैं॥30॥**

अब यहाँ बताया जा रहा है कि नीतिमान व्यक्ति लोभ से अपनी रक्षा करता है, क्योंकि लोभ सर्वनाश का कारण है—

(इन्द्रवज्रा)

लोहेण पण्णा पडिभंजएदि, पण्णा-विणासेण गलेदि लज्जा।
लज्जा-विणासेण गलेदि धम्मो, सद्धम्म-णासे सुहवित्त-णासो॥3 1॥

अन्वयार्थ—(**लोहेण**) लोभ से (**पण्णा पडिभंजएदि**) बुद्धि/प्रज्ञा नष्ट हो जाती है, (**पण्णा-विणासेण**) बुद्धि/प्रज्ञा के नष्ट होने से (**लज्जा गलेदि**) लज्जा नष्ट होती है, (**लज्जा-विणासेण**) लज्जा के नष्ट हो जाने से (**धम्मो गलेदि**) धर्म नष्ट हो जाता है (**य**) और (**सद्धम्म-णासे**) समीचीन धर्म के नष्ट हो जाने पर (**सुह-वित्त-णासो होदि**) सुख और धन का नाश निश्चित ही हो जाता है॥**3 1॥**

भावार्थ—नीतिमान व्यक्ति कभी लोभ नहीं करता भले ही वह लोभ छोटा हो या बड़ा; क्योंकि लोभ सर्वनाश का ही कारण बनता है। **लोभ के उत्पन्न होते ही मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है** रावण की तरह, **बुद्धि का विनाश होते ही लज्जा चली जाती है** शूर्पणखा की तरह, **लज्जा के जाते ही धर्म भी चला ही जाता है** वेश्या की तरह और **सच्चे धर्म के जाते ही सुख और धन भी नष्ट हो जाता है** मरीची की तरह; इसलिये नीतिमान व्यक्ति हमेशा लोभ से दूर ही रहते हैं॥**3 1॥**

महान व्यक्तित्व कैसे प्राप्त होता है? अब यहाँ इस नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

लोए गुरूणं कडु-भासणेणं, अणादिदो उग्गहदे महत्तं।
ठाणं मणी णेदि ण रायसीसे, कसे विणा संघरिसेण जीवो॥32॥

अन्वयार्थ—(**लोए**) लोक में (**गुरूणं कडु-भासणेणं**) गुरुजनों के कठोर शब्दों वाले कथन से (**अणादिदो जीवो**) अनादृत मनुष्य ही (**महत्तं उग्गहदे**) महत्त्व को प्राप्त करते हैं। ठीक है, (**कसे**) कसौटी पर (**संघरिसेणं विणा**) घिसे बिना (**मणी**) मणि (**रायसीसे**) राजाओं के सिर पर (**ठाणं ण णेदि**) स्थान नहीं प्राप्त कर पाती है।।32।।

भावार्थ—गुरु अथवा पिता जनों की डाँट से ही मनुष्य लोक में ऊँचे व्यक्तित्व और प्रभुत्व को प्राप्त कर पाता है; इस नीति का कथन करते हुये यहाँ कहा गया है कि—**इस लोक में पिताजन, पूज्यजन और दीक्षा-शिक्षा प्रदायक गुरुजनों की कठोर अक्षरों वाली वाणी से तिरस्कृत अथवा अपमानित मनुष्य ही विशाल व्यक्तित्व और सर्वमान्य दोषरहित प्रभुत्व को प्राप्त कर पाते हैं; सो ठीक ही है–बिना परीक्षा के अथवा बिना कसौटी पर घिसे कोई भी मणि राजाओं के मुकुट पर स्थान प्राप्त नहीं कर पाती है॥32॥**

कब किसकी प्रशंसा करना चाहिये? अब यहाँ इस महान बनाने वाली नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

सुणाण-लाहे सइ साहगस्स, णिद्दोस-तारुण्ण-गदम्हि थीए।
सूरस्स जुद्धम्हि जए हि सब्भो, अण्णस्स सम्मं पचणे थुणेदि॥33॥

अन्वयार्थ—(सब्भो) सभ्य पुरुष **(अण्णस्स सम्मं पचणे थुणेदि)** अच्छे प्रकार से पच जाने पर अन्न की प्रशंसा करते हैं, **(णिद्दोस-तारुण्ण-गदम्हि थीए)** निर्दोष तरुणावस्था बीत जाने पर स्त्री की **(थुणेदि)** प्रशंसा करते हैं, **(जुद्धम्हि जए सूरस्स हि थुणेहि)** युद्ध में जीत होने पर शूर की प्रशंसा करते हैं और **(सुणाण-लाहे सइ)** सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो जाने पर सदा ही **(साहगस्स थुणेदि)** साधक और तपस्वी की प्रशंसा करते हैं॥33॥

भावार्थ—हर समय हर किसी की प्रशंसा करने से अपनी गरिमा गिर सकती है अथवा स्वयं की प्रामाणिकता जा सकती है, इसलिये कब-कब किस-किसकी प्रशंसा करनी चाहिये—इस नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**सज्जन पुरुष भले प्रकार से पच जाने के बाद खाये हुये अन्न/भोजन की प्रशंसा करते हैं, निष्कलंक जवानी निकल जाने के बाद स्त्री की प्रशंसा करते हैं, संग्राम अथवा युद्ध में विजय-लाभ होने के बाद ही शूर-वीर पुरुषों की प्रशंसा करते हैं और तत्त्वज्ञान अथवा समीचीन हेयोपादेय बुद्धि रूप विवेक ज्ञान की लब्धि हो जाने पर तपस्वियों की प्रशंसा करते हैं॥33॥**

सलाह किसे दें, किसे न दें? अब यहाँ इस रक्षा करनेवाली नीति को कह रहे हैं—

(उपजाति)

सगं हवित्ता चउरो मुणित्ता, जीवेदि जीवो भयहीण-धिट्ठो।
कदावि तं देहि ण जो विमस्सं, अण्णस्स सोच्छेदि ण सो विमस्सं॥34॥

अन्वयार्थ—(जो जीवो) जो मनुष्य **(सगं चउरो मुणित्ता)** स्वयं को चतुर मानकर और **(भयहीण-धिट्ठो हवित्ता)** निर्भय तथा धृष्ट या अकडू होकर **(जीवेदि)** जीवन जीता है; **(तं कदावि ण देहि विमस्सं)**, उस मनुष्य को कभी भी कोई भी विमर्श या सलाह नहीं देनी चाहिये, क्योंकि **(सो अण्णस्स)** वह अन्य की **(विमस्सं ण सोच्छेदि)** सलाह नहीं सुनता है।।34।।

भावार्थ—गलत व्यक्ति को दी गई सही सलाह भी निरर्थक चली जाती है; इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**जो मनुष्य अपने आपको चतुर, बुद्धिमान मानकर तथा निर्भय और अकडू बनकर जीते हैं; ऐसे मनुष्यों को कभी भी किसी भी प्रकार की सलाह नहीं देना चाहिये, क्योंकि ऐसे अव्यावहारिक लोग दूसरों के द्वारा दी गई सही सलाह को भी उपेक्षित करके उसे सुनना पसंद नहीं करते हैं।** इसके विपरीत जो विनयवान होकर आपसे पूछे अथवा आपकी सुनता हो, उसे सलाह देना चाहिये**॥34॥**

इच्छित पदार्थ की प्राप्ति किसे नहीं होती? अब यहाँ इस नीति वाक्य का कथन कर रहे हैं—

(इन्द्रवज्रा)

आलस्स-जुत्ता सइ कायरा जे, भूलोय-चच्चादु तहेव भीदा।
घोराहिमाणी समयासिदा वा, एदे णरा णेव अहिट्ठ-लाहो॥35॥

अन्वयार्थ—(**जे**) जो (**आलस्स-जुत्ता**) मनुष्य आलस्य से युक्त हैं, (**कायरा**) कातर हैं, (**भूलोय-चच्चादु**) लोक की चर्चाओं से (**भीदा**) डरनेवाले हैं (**तहेव**) तथा (**घोर-अहिमाणी**) घोर-अभिमानी हैं (**वा**) और (**सइ समय-आसिदा**) सदा ही समय के आश्रित रहते हैं; (**एदे णरा**) ऐसे मनुष्यों को (**अहिट्ठलाहो णेव**) अपने अभीष्ट की प्राप्ति नहीं होती है॥35॥

भावार्थ—इच्छित पदार्थों की प्राप्ति न होने के पाँच मुख्य कारणों की चर्चा करते हुये यहाँ इस नीति में कहा जा रहा है कि—**जो आलस-स्वभावी हैं, जो कायर अथवा डरपोक हैं, जो लोक में होनेवाली वार्ता या चर्चा से डरते रहते हें, जो घोर अहंकार में जीते रहते हैं तथा हमेशा ही समय की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं; ऐसे लोग सुकुल में भी जन्में तो भी अपने इच्छित वस्तु अथवा अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति कभी नहीं कर पाते हैं॥35॥**

अकाल, सूखा, मरण और भय कहाँ होता है? अब यहाँ इस बात को कह रहे हैं?

(उपजाति)

अपुज्ज-पूया जहि होदि णिच्चं, आरज्झ-संपुज्ज-अणादरो वा।
अकाल-कालो मरणं भयं च, तत्थेव कज्जाणि हवेदि तिण्णि॥36॥

अन्वयार्थ—**(जहि)** जहाँ पर **(अपुज्ज-पूया णिच्चं होदि)** अपूज्यों की पूजा हमेशा होती है **(वा)** अथवा **(आरज्झ-संपुज्ज-अणादरो)** आराध्य-गुरुजन या पूज्यों का अनादर होता है; **(तत्थ एव)** वहाँ ही **(अकाल-कालो मरणं भयं च)** अकाल का काल, अकाल में मरण और भय; **(तिण्णि कज्जाणि हवेदि)** ये तीन काम होते रहते हैं॥36॥

भावार्थ—अकाल, दुर्भिक्ष, सूखा, डर इत्यादि प्राणघातक परिस्थितियाँ कहाँ अथवा किस स्थान में उपस्थित होती हैं; इस नीतिज्ञान को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—प्रायः करके दो स्थानों में अकाल अर्थात् सूखा या बहुत अधिक वर्षा, अकस्मात् मरण अर्थात् वज्रपात, सुनामी, भूकम्प आदि के द्वारा मृत्यु और अहर्निश मृत्यु का भय बना रहता है—**पहला जहाँ अपूज्य पुरुषों को पूजा होती है; दूसरा जहाँ आराध्य (सर्वमान्य) गुरुजन या फिर पूज्य पुरुषों का अपमान हमेशा होता रहता है। इसलिये जहाँ भी अपूज्यों की पूजा और पूज्यों का अपमान हो उस स्थान को छोड़कर स्थानान्तरित हो जाना चाहिये। अन्यथा मृत्यु, भय और अकाल जैसी परिस्थितियाँ सहना पड़ सकती हैं॥36॥**

सर्वश्रेष्ठ नेता कौन होता है? अब यहाँ इस नेतृत्व कला प्रदायक नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

जो अप्प-वीसास-विरत्ति-ठेज्जं, वयाणि तिण्णि समए धरेदि।
सो सो सया सव्व-गुणासयादो, हवेदि णूणं पमुहो पयाए॥37॥

अन्वयार्थ—**(जो)** जो मनुष्य **(अप्प-वीसास-विरत्ति-ठेज्जं)** आत्मविश्वास, विरक्ति और स्थैर्य; **(वयाणि तिण्णि समए धरेदि)** इन तीन बातों को समय अर्थात् अपनी आत्मा में धारण करता है; **(सो सो णूणं)** वो वो मनुष्य ही **(सव्वगुण-आसयादो)** समस्त श्रेष्ठ गुणों का आश्रय होने से **(सया पयाए पमुहो हवेदि)** सदा ही प्रजा का प्रमुख अर्थात् नेता होता है॥37॥

भावार्थ—सर्वमान्य नायक बनने के लिये तीन गुणों को धारण करना आवश्यक है, इस नेतृत्व कला प्रदायक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**आत्मविश्वास, सर्वसम्पत्ति से अनासक्ति और दृढ़ता अर्थात् स्थिरता; ये तीनों महान गुण जो भी मनुष्य अपने अंदर धारण करता है, आत्मसात् करता है; वो मनुष्य सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों का आश्रय लेने से सम्पूर्ण प्रजाजन का नेतृत्व करनेवाला नेता अर्थात् सर्वमान्य नायक बनता है।** इसलिये जिन्हें भी नेता बनकर प्रमुख बनने का भाव है उन्हें आत्मविश्वास, दृढ़ता और वैराग्य का अभ्यास करते रहना चाहिये॥37॥

बुद्धिमान व्यक्ति के 4 विशेष कार्य कौन से? अब यहाँ इस बुद्धिवर्धक नीति को कह रहे हैं—

(उपजाति)

विज्झेदि णिच्चं कलहादु णाणी, विरोह-वेरादु विहा पुणो वि।
सहेदि ईसं धण-हाणिगं च, वेरादु लाहं मुयदे धणस्स॥38॥

अन्वयार्थ—**(णाणी)** बुद्धिमान मनुष्य **(णिच्चं)** हमेशा **(कलहादु विज्झेदि)** कलह से दूर रहते हैं **(पुणो)** और **(विरोह-वेरादु विहा वि)** व्यर्थ के विरोध और बैर से भी दूर रहते हैं, **(ईसं धण-हाणिगं च)** ईर्ष्या और धन की हानि को **(सहेदि)** सहन करते हैं एवं **(वेरादु धणस्स लाहं मुयदे)** बैर से होनेवाले धन के लाभ को छोड़ देते हैं॥38॥

भावार्थ—बुद्धिमान मनुष्य जब भी कोई काम करते हैं, उसमें कुछ न कुछ विशेषता अवश्य ही होती है अथवा बुद्धिमान मनुष्य सामान्य मनुष्यों से विशेष अर्थात् हटकर काम करते हैं; इस बुद्धिमान बनाने वाली नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि **बुद्धिमान मनुष्य 4 विशेष काम करते हैं–1. हमेशा कलह से दूर रहते हैं, 2. व्यर्थ के बैर-विरोध में नहीं पड़ते, 3. ईर्ष्या और थोड़ी सी धन की हानि को सहन करते हैं और 4. बैर से होनेवाले धनादि के लाभ को छोड़ देते हैं।** अतः आपके जीवन में भी ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित हों तो बुद्धिमानों की तरह काम करें॥38॥

क्या-क्या देर तक नहीं देखना चाहिये? अब यहाँ इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

आदिच्च-उग्गं पउरं च कालं, अच्चंत-दित्तं अपियं च दव्वं।
असुद्ध-दव्वं सुहुमं अजस्सं, दीसिज्ज णाणी-मणुआ ण चेव॥३९॥

अन्वयार्थ—**(णाणी-मणुआ)** ज्ञानी मनुष्य को **(पउरं कालं)** प्रचुर अथवा बहुत काल तक **(आदिच्च-उग्गं)** प्रचण्ड सूर्य को **(च)** और **(अच्चंत-दित्तं दव्वं)** अत्यन्त दीप्त द्रव्य को, **(अपियं)** अप्रिय द्रव्य को **(च)** तथा **(सुहुमं असुद्ध-दव्वं)** सूक्ष्म द्रव्य को और अशुद्ध द्रव्य को भी **(अजस्सं)** निरन्तर **(ण एव दिसिज्ज)** नहीं देखना चाहिये॥३९॥

भावार्थ—कई चीजें प्रकृति में ऐसी होती हैं जिन्हें निरन्तर अथवा बहुत देर तक देखने से हानि ही होती है; यहाँ ऐसी ही 5 चीजों के बारे में बता रहे हैं कि समझदार लोगों को **1. प्रचण्ड, उग्र और तीव्र तप्त सूर्य को, 2. अत्यन्त दीप्त अर्थात् चमकनेवाली वस्तु को, 3. चित्त को अप्रिय लगनेवाली, संक्लेशता उत्पन्न करनेवाली वस्तु को, 4. सूक्ष्म वस्तु को अर्थात् बहुत गौर से देखने पर दिखने वाली वस्तु को और 5. अशुचि अर्थात् अशुद्ध वस्तु को; जो चित्त को मलिन कर दे, ऐसी वस्तु को; निरन्तर या फिर अधिक समय तक नहीं देखना चाहिये, क्योंकि ऐसी चीजों को देखने से नेत्रज्योति मंद हो जाती है, मेधा शक्ति क्षीण हो जाती है और मन उद्वेलित होने लगता है॥३९॥**

किस संतान/पुत्र का जन्म लेना निरर्थक है? अब यहाँ इस महत्त्वपूर्ण नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

पुत्तं ण णित्थारदि वप्पचिंतं, सेट्ठे समत्थे अवि वप्पवंछं।
धिगत्थु तं तं परिपूरदे णो, पुत्तस्स से किं पसवस्स झेओ॥40॥

अन्वयार्थ—(**पुत्तं**) जो पुत्र (**सेट्ठे समत्थे अवि**) श्रेष्ठ और समर्थ होने पर भी (**वप्पचिंतं ण णित्थारदि**) पिता की चिंता को दूर नहीं कर पाता है और (**वप्पवंछं णो परिपूरदे**) जो पिता की आकांक्षा को पूर्ण नहीं कर पाता है, (**तं तं धिगत्थु**) उस उस पुत्र को धिक्कार हो। (**से पुत्तस्स**) उस पुत्र के (**पसवस्स**) प्रसव से (**किं**) क्या प्रयोजन; (**झेओ**) ऐसा समझना चाहिये॥40॥

भावार्थ—जन्म लेकर पिता और गुरु के लिये आपने क्या-क्या किया है, आपके जन्म लेने की सार्थकता इसी में है; इस महत्त्वपूर्ण नीति का व्याख्यान करते हुये कह रहे हैं कि—**जो पुत्र श्रेष्ठ और समर्थवान होने पर भी अपने पिता की चिंता को दूर नहीं कर पाता है अथवा समर्थवान होते हुये भी पिता के मनोरथ को उनकी इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर पाता है; उस पुत्र को धिक्कार हो।** नीतिकार कहते हैं कि—ऐसे पुत्र के जन्म लेने से क्या प्रयोजन है? अर्थात् ऐसे पुत्र का मनुष्य लोक में जन्म लेना व्यर्थ है, निरर्थक है। अगर आप ऐसे पुत्र की श्रेणी में आते हैं तो सुधरें और अगर नहीं आते हैं, तो गुणों को बनाकर रखें॥40॥

कब क्या समाप्त हो जाता है? अब यहाँ इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

विसाख-पच्छा वरिसा गलेदि, पसूदि-पच्छा तियजोवणं च।
पणाम-पच्छा य सुभद्द-कोहो, जायाण-पच्छा णर-संपदिट्ठा॥41॥

अन्वयार्थ—(**विसाख-पच्छा**) विशाखा नक्षत्र के पश्चात् (**वरिसा गलेदि**) वर्षाकाल समाप्त हो जाता है, (**पसूदि-पच्छा**) प्रसूति के पश्चात् (**तिय-जोवणं च**) स्त्री का यौवन समाप्त हो जाता है, (**पणाम-पच्छा**) प्रणाम के पश्चात् (**सुभद्द-कोहो य**) सुभद्र अर्थात् सज्जनों का क्रोध और (**जायाण-पच्छा**) याचना के पश्चात् (**णर-संपदिट्ठा**) मनुष्य की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है॥**41**॥

भावार्थ—प्रत्येक अवस्था या वस्तु जो उत्पन्न होती है उसकी समाप्ति का समय भी निश्चित आता ही है और जिसे समाप्ति का बोध हो जाता है वो सतर्क, जागरुक हो जाता है; इस नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**विशाखा नक्षत्र के उपरान्त वर्षाकाल समाप्त हो जाता है, प्रसव अर्थात् संतान को जन्म देने के उपरान्त नारी का लावण्य और यौवन समाप्त हो जाता है, नमस्कार करने के उपरान्त अथवा नम्रीभूत होने के उपरान्त साधु-पुरुषों का क्रोध समाप्त हो जाता है और याचना करने के उपरान्त अर्थात् माँगने के उपरान्त मनुष्य का गौरव मनुष्य की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है।** अतः

जिसे भी अपनी प्रतिष्ठा और गौरव बचा कर रखना हो, उसे याचना कभी नहीं करनी चाहिये। माँगने से मनुष्य छोटा हो जाता है और देने से बड़ा हो जाता है॥41॥

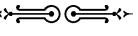

और भी अपना.....

जिसे देखकर
तुम दुनिया को भूल जाओ
समझना
वह अपना है,
जिसे देखकर
तुम खुद को भी भूल जाओ
समझना
वह और भी अपना है।

कौन से कार्य अकेले नहीं करने चाहिये? अब यहाँ इस व्यावहारिक नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

पियासणं कुव्वदु एगधा णो, कहं पि वत्ताय विणिच्छयो णो।
पंथे गदिं जग्गदु णेव णिच्चं, जदेट्ठु-जीवस्स सये तहेव॥42॥

अन्वयार्थ—**(पिय-असणं)** स्वादिष्ट भोजन **(एगधा णो कुव्वदु)** अकेले न करें, **(कहं पि वत्ताय)** किसी भी बात का **(विणिच्छयो णो एगधा कुव्वदु)** निश्चय अकेले न करें, **(पंथे गदिं तहेव)** उसी प्रकार रास्ते में अकेले न चलें और **(जदेट्ठु-जीवस्स सये)** बहुत से लोगों के सो जाने पर **(णेव जग्गदु)** अकेले न जागते रहें॥42॥

भावार्थ—कुछ कार्य जीवन में अकेले ही करना चाहिये, किन्तु कुछ कार्य अकेले न करके सबके साथ समूह में ही करना योग्य होता है; इस व्यावहारिक बनाने वाली नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—चार काम कभी भी अकेले-अकेले नहीं करना चाहिये—**1. अकेले स्वादिष्ट भोजन नहीं करना चाहिये, 2. अकेले किसी भी विषय या बात का निश्चय नहीं करना चाहिये, 3. अकेले किसी रास्ते पर नहीं चलना चाहिये और 4. बहुत से लोग सोये हुये हों तो अकेले नहीं जागना चाहिये।** ऐसे करने से आपके अंदर व्यावहारिकता आयेगी और साथ ही साथ आप कभी भी संदेह के घेरे में नहीं आवेंगे। अतः इन चारों कामों को कभी भी अकेले न करें॥42॥

बुरे लोगों के संगठित हो जाने पर क्या करना चाहिये? अब यहाँ इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

असज्जणा संगढिदा जदा वि, मुंचेदु देसं परदो दु सिट्ठं।
चागं विणा सज्जणयं मिलिज्जा, तेसुं तदा सिं कमसो विणासो॥43॥

अन्वयार्थ—**(जदा वि)** जब भी **(असज्जणा संगढिदा)** असज्जन लोग संगठित हो जावें, **(तदा)** तब **(सिट्ठं)** सज्जन को **(देसं मुंचेदु)** वो देश छोड़ देना चाहिये **(परदो)** अथवा **(चागं विणा सज्जणयं तेसुं मिलिज्जा)** सज्जनता त्यागे बिना उनमें मिल जाना चाहिये **(दु)** अन्यथा **(सिं कमसो विणासो)** क्रमशः उनका अर्थात् सज्जनों का विनाश हो जावेगा॥43॥

भावार्थ—संगठन में बहुत शक्ति है और यदि बुरे लोगों का संगठन हो जाये तो सर्वनाश की आशंसा हो जाती है; इसलिये जब ऐसी स्थिति आये तो रक्षात्मक नीति का प्रयोग करना चाहिये। **जब भी जहाँ भी बुरे लोग, अथवा दुष्ट प्रवृत्ति के लोग संगठित हो जायें, तब सज्जनों को दो में से एक काम करना चाहिये। पहला–दुर्जनों के देश को छोड़कर चले जाना चाहिये अथवा दूसरा–अपनी सज्जनता और गुणों को छोड़े बिना चुपचाप उनमें कुछ समय के लिये मिल जाना चाहिये।** ऐसा करने से सज्जनों की रक्षा हो सकती है अन्यथा एक-एक करके सज्जनों का विनाश निश्चित हो जायेगा। अतः ऐसी विपरीत परिस्थिति में स्वरक्षा का ये सर्वश्रेष्ठ उपाय है॥43॥

क्या है मानसिक अंधकार और मानसिक आत्मघात? अब यहाँ इस रक्षायोग्य नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

पुरादणाघाद-मिदीय जीवो, पसज्जदे माणसिगं तमं वा।
आघाद-कत्ता-पडिसोह-चिंता, पसज्जदे माणसिगप्पघादं॥44॥

अन्वयार्थ—**(पुरादण-आघाद-मिदीय)** पुराने आघातों की स्मृति से **(जीवो)** जीव **(माणसिगं तमं पसज्जदे)** मानसिक अन्धकार को प्राप्त करता है **(वा)** और **(आघाद-कत्ता-पडिसोह-चिंता)** आघात कर्त्ताओं से बदला लेने का अर्थात् प्रतिशोध का विचार करने से **(जीवो)** जीव **(माणसिग-अप्पघादं पसज्जदे)** मानसिक आत्मघात को प्राप्त करता है॥44॥

भावार्थ—मानसिक अंधकार और मानसिक आत्मघात मनुष्य को आगे बढ़ने नहीं देता है तथा ऐसी स्थिति में मनुष्य का बौद्धिक और शारीरिक विकास समाप्त हो जाता है; ऐसा हो जाने पर मनुष्य को रक्षायोग्य नीति का आश्रय लेना चाहिये। यहाँ इस रक्षायोग्य नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**पुराने आघात, हादसे या धोखा आदि देकर धन का हरण हो जाने पर उन हादसों का स्मरण करना मानसिक अन्धकार है और आघात-कर्त्ता या धोखा देनेवाले से बदला लेने की चिंता मानसिक आत्मघात है।** इसलिये न तो पुराने हादसों को याद करना चाहिये और न ही दुःख देनेवाले, धोखा देनेवाले उन आघात कर्त्ताओं से बदला लेने का विचार करना चाहिये; ऐसा करने से आपका विकास कई गुना अधिक गति से होगा॥44॥

अब यहाँ नीतिमान पुरुष के लिये मनुष्य लोक के छह विशेष सुखों की चर्चा कर रहे हैं—

(उपजाति)

अरोगदा वा रिणहीणदा वा, सदेस-वासो अखलेण संगो।
सगासिदत्तं तह णिब्भयत्तं, जीवप्प-संसार-सुहाणि णिच्चं॥45॥

अन्वयार्थ—(**णिच्चं**) हमेशा (**अरोगदा**) निरोगी रहना (**वा**) और (**रिणहीणदा**) ऋणी न होना (**वा**) और (**सदेस-वासो**) स्वदेश में रहना, (**अखलेण संगो**) सज्जनों की संगति होना, (**सग-आसिदत्तं**) स्वाश्रित होना (**तह**) तथा (**णिब्भयत्तं**) निर्भय होकर रहना; (**जीव-अप्प-संसार-सुहाणि**) ये जीवात्मा अर्थात् मनुष्य लोक के सुख हैं॥45॥

भावार्थ—नीतिमान मनुष्यों के इस लोक में छह विशेष सुख माने गये हैं, जिनके निमित्त से जीवन की संक्लेशता शान्ति में बदल जाती है। **1. हमेशा निरोगी रहना, 2. हमेशा ऋण हीन रहना, 3. हमेशा शान्तिपूर्वक स्वदेश में वास करना, 4. हमेशा सज्जनों की संगति होना, 5. हमेशा स्वाश्रित होना और 6. हमेशा निर्भय रहना; ये छह सुख मनुष्य लोक के हैं।** नीतिमान व्यक्ति को हमेशा इन सुखों की प्राप्ति का पुरुषार्थ करते रहना चाहिये॥45॥

अब यहाँ पर नीतिमान पुरुषों के लिये मनुष्य लोक के आठ विशेष दुःखों की चर्चा कर रहे हैं—

(उपजाति)

ईसा य कोहो सइ संकिदत्तं, घिणा अतित्ती विसणाहिलासा।
परासिदत्तं अविणीददा य, जीवप्प-संसार-दुहाणि णिच्चं॥46॥

अन्वयार्थ—(**णिच्चं**) हमेशा (**ईसा**) ईर्ष्या करना, (**कोहो**) क्रोध करना (**य**) और (**सइ**) सदा (**संकिदत्तं**) शंकित रहना, (**घिणा**) घृणा करना, (**अतित्ती**) अतृप्ती रहना, (**विसण-अहिलासा**) व्यसनों की अभिलाषा करना, (**पर-आसिदत्तं**) पर के आश्रित रहना (**य**) और (**अविणीददा**) अविनीत रहना; (**जीव-अप्प-संसार-दुहाणि**) ये जीवात्मा अर्थात् मनुष्य लोक के दुःख हैं॥46॥

भावार्थ—नीतिमान मनुष्यों ने इस लोक में मनुष्य के अंदर पाये जाने वाले आठ विशेष अवगुण या दुःख माने हैं, जिनके कारण मनुष्य अपने सुखमय जीवन को दुःखमय बना लेता है। **1. ईर्ष्या करना, 2. क्षण-क्षण में क्रोध करना, 3. हमेशा सभी पर शंका करना, 4. घृणा करना, 5. अतृप्ती अर्थात् असंतुष्ट रहना, 6. जीवन को गर्त में डालनेवाले सात व्यसनों की इच्छा करना, 7. दूसरों के भाग्य पर जीवन का निर्वाह करना और 8. अविनीत अर्थात् अविनयी होना; ये आठ मनुष्यलोक के दुःख हैं।** इनसे नीतिमान मनुष्य को हमेशा दूरी रखना चाहिये॥46॥

अब यहाँ पर नीतिमान व्यक्ति को किसे अपना सलाहकार बनाना चाहिये? इसका व्याख्यान करते हैं—

(उपजाति)

जो अण्ण-जीवस्स पुलित्तु रूवं, तस्साहिपायं च सया मुणेदि।
जम्हा य तम्हा मणुयं च एदं, कीरेदु संबुद्धि-सहायगो हि॥47॥

अन्वयार्थ—**(जो)** जो व्यक्ति **(अण्ण-जीवस्स)** किसी अन्य व्यक्ति की **(रूवं पुलित्तु)** आकृति को देखकर **(तस्स अहिपायं च सया)** उसके अभिप्राय को हमेशा ही **(मुणेदि)** जान लेता है; **(एदं च मणुयं)** ऐसे मनुष्य को **(जम्हा य तम्हा)** चाहे जैसे बने वैसे अपना **(संबुद्धि-सहायगो)** सलाहकार **(कीरेदु हि)** ही बनाना चाहिये॥47॥

भावार्थ—नीतिमान मनुष्यों को अपना सलाहकार किसे बनाना चाहिये; इन नीति का व्याख्यान करते हुये कह रहे हैं कि—**जो चेहरे पढ़ना जानता हो, जो मनुष्य की हरकतों से उसके भावों को पढ़ ले अथवा जो किसी मनुष्य की आकृति, उसके रूप को देखकर उसके अभिप्राय को हमेशा ताड़ जाये; ऐसे मनुष्यों को चाहे जैसे बने वैसे अपना सलाहकार बनाओ॥47॥**

अब यहाँ बता रहे हैं कि नीतिमान मनुष्य को अयोग्य वस्तु और अयोग्य व्यक्ति को शीघ्र छोड़ देना चाहिये—

(उपजाति)

पवित्त-जीवेहि समं कुणेहि, णेहादु मेत्तिं अणुरागदो य।
अजोग्ग-जीवाण दवेहि संगं, देदूण वा किंचण पाहुडं पि॥48॥

अन्वयार्थ—**(पवित्त-जीवेहि समं)** पवित्र लोगों के साथ **(णेहादु य अणुरागदो)** स्नेह से और अनुराग से **(मेत्तिं कुणेहि)** मित्रता करो, **(वा)** लेकिन **(अजोग्ग-जीवेहि)** अयोग्य जीवों का **(संगं)** संग अर्थात् साथ **(किंचण पाहुडं पि देदूणं)** किंचित् या कुछ भेंट देकर भी **(दवेहि)** छोड़ दो॥48॥

भावार्थ—नीतिमान मनुष्य अयोग्य अर्थात् हानिकारक वस्तु और व्यक्ति को अपने पास कभी नहीं रखते हैं, उसे शीघ्र ही छोड़ देते हैं; इस नीति को बतलाते हुये यहाँ कह रहे हैं कि—**इस जीवन में पवित्र और उत्तम मनुष्यों के साथ स्नेह पूर्वक और अनुराग पूर्वक मित्रता करो, लेकिन जो अयोग्य पुरुष हैं अथवा गुणहीन हैं उनके साथ कभी मत रहो; विशेष यह है कि ऐसे लोगों का साथ कुछ भेंट देकर भी छोड़ना पड़े तो छोड़ दो॥48॥**

अब यहाँ बता रहे हैं कि मूर्ख और नीतिमान विद्वान में क्या अंतर है—

(उपजाति)

करंति मूढो लहुकज्जमेवं, तत्थेव विग्गो वियलो हवंति।
रंभंति णाणी गुरुभीमकज्जं, णिस्संक-तुट्ठो णियरं हवंति॥49॥

अन्वयार्थ—**(मूढ़ो)** मूर्ख मनुष्य **(लहुकज्जं करंति)** छोटा-सा काम करते हैं **(एवं)** और **(तत्थ एव)** उसी में **(विग्गो वियलो)** व्यग्र और बेचैन **(हवंति)** हो जाते हैं। **(णाणी)** बुद्धिमान और नीतिमान **(गुरुभीमकज्जं)** बड़े से बड़ा काम भी **(रंभंति)** आरम्भ करते हैं **(एवं)** और **(णियरं)** सदा ही **(णिस्संक-तुट्ठो)** निःशंक, निश्चिंत और संतुष्ट **(हवंति)** बने रहते हैं॥49॥

भावार्थ—नीतिमान, बुद्धिमान अथवा विद्वान मनुष्यों में और बुद्धिहीन मूर्खों में क्या अंतर है? इस बात को यहाँ दर्शाते हुये कह रहे हैं कि—**मूर्ख मनुष्य छोटा-सा काम करने पर भी व्यग्र, विकल चित्त अथवा बेचैन हो जाते हैं, संक्लेशित हो जाते हैं। वहीं दूसरी ओर नीतिज्ञ, विद्वान जन बड़े से बड़ा काम आरम्भ करने पर भी हमेशा निश्चिंत, निःशंक और संतुष्ट बने रहते हैं॥49॥**

अब यहाँ बता रहे हैं कि लक्ष्मी/सम्पत्ति किस-किस का साथ छोड़ देती है—

(उपजाति)

अदीव-भोजी कडु-उग्ग-वादी, अत्थोदयं अंसुधरं सयालू।
मलीण-वत्थं धरए सया जो, मुंचेदि लच्छी जदि तं स देवो॥50॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**सया**) हमेशा (**अदीव-भोजी**) अधिक भोजन करनेवाला है, (**कडु-उग्ग-वादी**) कटुवादी है, उग्रवादी है, (**अत्थोदयं अंसुधरं सयालू**) सूर्योदय और सूर्यास्त तक सोनेवाला है, (**मलीण-वत्थं धरए**) और हमेशा मैले वस्त्र धारण करता है, (**जदि स देवो**) यदि वह देव भी क्यों न हो (**तं लच्छी मुंचेदि**) उसको लक्ष्मी छोड़ ही देती है॥50॥

भावार्थ—पाँच प्रकार के ऐसे कौन से मनुष्य हैं, जिन्हें लक्ष्मी छोड़कर चली जाती हैं; इस नीति की यहाँ चर्चा करते हुये कहा गया कि—**1. अधिक खानेवाले को अर्थात् पेटू को 2. कटुवादी को अर्थात् कड़वा बोलनेवाले को, 3. उग्रवादी को अर्थात् तमतमाकर उग्र-उग्र कहनेवाले को, 4. सूर्योदय से अस्त तक सोनेवाले को अर्थात् दिन में सोनेवाले को और गंदे, मैले-कुचैले कपड़े पहननेवाले को लक्ष्मी शीघ्र ही छोड़कर चली जाती है,** वह निर्धन हो जाता है, फिर चाहे वह साक्षात् देव या भगवान् भी क्यों न हो॥50॥

अब यहाँ किस-किसके लिये क्या-क्या कष्ट देनेवाला होता है, इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

गिहत्थ-कट्ठं रिण-धारणं च, भदंत-कट्ठं धण-धारणं च।
कंतस्स कट्ठं च अजोग्ग-इत्थी, सव्वस्स कट्ठं च मणे अतुट्ठी॥51॥

कट्ठं परासत्त-पदी कलत्तं, रंडा-दुहं भूसण-धारणं च।
राया-दुहं वा अवधावणं च, पिदू-दुहं पुत्त-कुपुत्तत्तं च॥52॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**रिण-धारणं**) कर्ज होना (**गिहत्थकट्ठं**) गृहस्थों का कष्ट है, (**च**) और (**धण-धारणं भदंत-कट्ठं**) धन रखना मुनियों तथा योगियों का कष्ट है (**च**) और (**अजोग्ग-इत्थी कंतस्स कट्ठं**) अयोग्य-स्त्री का होना पति का कष्ट है (**च**) और (**परासत्त-पदी कलत्तं कट्ठं**) परस्त्री पर आसक्त पति स्त्री का कष्ट है (**च**) और (**भूसण-धारणं रंडा-दुहं**) आभूषण धारण करना विधवा का कष्ट है (**वा**) और (**अवधावणं राया-दुहं**) पीठ दिखाकर भागना राजा का दुःख है (**च**) और (**पुत्त-कुपुत्तत्तं पिदू-दुहं**) पुत्र का कुपुत्र होना पिता का दुःख है (**च**) और (**मणे अतुट्ठी**) मन में अतुष्टि का होना (**सव्वस्स कट्ठं**) सभी का कष्ट है॥51-52॥

भावार्थ—हर किसी के जीवन में दुःख-कष्टों का आना जाना लगा ही रहता है, फिर भी किस-किसके लिये क्या-क्या विशेष कष्टदायक होता है? इस

नीति का व्याख्यान करते हुये कह रहे हैं कि—**कर्ज होना सामान्य गृहस्थों के लिये कष्ट है, धन-सम्पत्ति का होना साधुओं के लिये कष्ट है, आभूषण धारण करना या शृंगार करना विधवा-स्त्रियों के लिये कष्ट है, रणभूमि में पीठ दिखाकर भागना राजा के लिये कष्ट है, पति का किसी परस्त्री पर आसक्त होना स्त्री के लिये कष्ट है, स्वपुत्र का व्यसनासक्त होकर कुपुत्र बन जाना माता-पिता के लिये कष्ट है, स्त्री का योग्य न होना पति के लिये कष्ट है और मन में संतोष न होना लोभ का होना सभी के लिये कष्ट है॥51-52॥**

सोच .....

दूसरे
हमारे बारे में
क्या सोच रहे हैं,
अकसर
इसी सोच के कारण
हम अपने बारे में
कुछ नहीं सोच पाते हैं।

अब यहाँ सुख-शान्ति का मूल क्या है? इस नीति की चर्चा कर रहे हैं—

(उपजाति)

णाणादु णिच्चं विणयो भजेदि, गुणेहि वित्तं विणया गुणा हि।
धम्मादु सोक्खं धणदो सुधम्मो, तम्हा दु मूलं विणयो सुहस्स॥53॥

अन्वयार्थ—**(णिच्चं)** हमेशा **(णाणादु विणयो भजेदि)** ज्ञान से विनय प्राप्त होती है, **(विणया गुणा)** विनय से गुण प्राप्त होते हैं, **(गुणेहि वित्तं)** गुणों से धन-संपत्ति प्राप्त होता है, **(धणदो सुधम्मो)** धन से धर्म प्राप्त होता है और **(धम्मादु सोक्खं)** धर्म से सौख्य प्राप्त होता है, **(तम्हा दु)** इसलिये तो **(सुहस्स मूलं विणयो हि)** सुख का मूल विनय ही है॥53॥

भावार्थ—हर कार्य के पीछे एक कारण होता है और हर कारण के बाद एक कार्य अवश्य होता है। सुख-शान्ति कार्य है तो विनय उसका कारण है, इस सुखवर्धक नीति का व्याख्यान करते हुये कह रहे हैं कि—**ज्ञान अर्थात् विद्या से विनय की प्राप्ति होती है, विनय के द्वारा गुण और योग्यतायें मिलती हैं, योग्यताओं और गुणों से धन की लब्धि होती है, धन के निमित्त से मनुष्य धर्म की क्रियाएँ करता है और धर्म की क्रियाओं से ही सुख और शान्ति की प्राप्ति होती है। इसलिये जिन्हें भी सुख और शान्ति की चाह है उन्हें सबसे पहला पुरुषार्थ विनम्रता का करना चाहिये।** ध्यान रखें नाम विनम्र रखने से सुख-शान्ति नहीं बढ़ेगी, अपितु जीवन में विनम्रता को बढ़ाने से सुख-शान्ति अवश्य बढ़ेगी॥53॥

अब यहाँ कह रहे हैं कि नीतिमान उत्तम मनुष्यों के लिये सबसे बड़ा धन क्या है?

(इन्द्रवज्रा)

इच्छंति णीचा य धणं सया हि, माणं धणं माणव-मज्झिमा वा।
सव्वोत्तमा चेव पिहंति माणं, सव्वादु वित्तादु गुरुं हि माणं॥54॥

अन्वयार्थ—(**णीचा सया हि**) अधम पुरुष हमेशा ही (**धणं इच्छंति**) धन चाहते हैं (**वा**) और (**माणव-मज्झमा**) मध्यम वर्ग के पुरुष (**धणं य माणं**) धन और मान दोनों (**इच्छंति**) चाहते हैं, (**चेव**) किन्तु (**सव्वोत्तमा**) उत्तम वर्ग के मनुष्य (**माणं पिहंति**) केवल मान ही चाहते हैं, क्योंकि (**सव्वादु वित्तादु**) सब धन से (**गुरुं**) बड़ा (**माणं हि**) मान ही है॥54॥

भावार्थ—जिसे दुनिया धन मान रही है, वह सच्चा धन नहीं है। सच्चा धन तो स्वभाव की रक्षा करना है, इस बोधप्रदायक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—तीन वर्ग के मनुष्य इस दुनिया में होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इनमें से **अधम मनुष्य हमेशा धन/सम्पत्ति की इच्छा करते हैं और मध्यम वर्ग के मनुष्य धन और मान दो की इच्छा करते हैं, किन्तु जो उत्तम वर्ग के नीतिमान मनुष्य होते हैं वो केवल मान की इच्छा करते हैं, क्योंकि विश्व की सम्पूर्ण सम्पत्ति, धन अथवा वैभव में मान सबसे उत्तम धन है।**

अतः उत्तम वर्ग की श्रेणी के मनुष्यों को धन से ज्यादा अपने मान-सम्मान की रक्षा करनी चाहिये। सम्मान रहित धनी पुरुष की कोई कीमत नहीं होती॥54॥

अब यहाँ बता रहे हैं कि कौन दुर्लंघ्य और कठिन संकटों से पार हो जाता है, बच जाता है?

(उपजाति)

अण्णादु इच्छेदि समादरं ण, सयं परा कुव्वदि आदरं जो।
सम्माणणिज्जा विणमेदि णिच्चं, दुल्लंघ-कट्ठाहि णिवज्जदे जो॥55॥

अन्वयार्थ—**(जो)** जो मनुष्य **(अण्णादु समादरं ण इच्छेदि)** दूसरों से समादर अर्थात् सम्मान की चाह नहीं करता और **(सयं)** स्वयं ही **(परा आदरं कुव्वदि)** दूसरों का आदर और सम्मान करता है तथा **(णिच्चं)** हमेशा ही **(सम्माणणिज्जा-विणमेदि)** सम्माननीय पुरुषों को नमस्कार करता है; **(सो)** वह **(दुल्लंघ-कट्ठाहि णिवज्जदे)** दुर्लंघ्य और कठिन कष्टों से भी पार हो जाता है॥55॥

भावार्थ—कष्ट और संकट प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उपस्थित होते हैं। किसी के संकट छोटे और अल्प समय के लिये आते हैं तो किसी के संकट बड़े और अधिक समय के लिये आते हैं, संकटों के काल में मनुष्य को नीति का प्रयोग करना चाहिये। ऐसी परिस्थिति के योग्य नीति का व्याख्यान करते हुये यहाँ कह रहे हैं कि—**जो दूसरों से आदर और सम्मान की चाह नहीं रखता, किन्तु दूसरों का आदर और सम्मान करने में चूक नहीं करता साथ ही साथ सम्माननीय पुरुषों की विनय करता है, उन्हें नमस्कार करता है; ऐसा नीतिमान पुरुष अपने जीवन में उपस्थित हुये बड़े-से-बड़े संकटों को भी क्षणमात्र में जीत लेता है॥55॥**

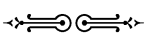

अब यहाँ बता रहे हैं कि किन कारणों से जीवन में दुःख-ही- दुःख की प्राप्ति होती है?

(इन्द्रवज्रा)

दारा-हिदू-पंडिद-णंदणेहिं, माया-पिदूहिं गुरु-रक्खगेहिं।
वेरं ण कुज्जा पडिवेसिणेहिं, दुक्खं हि सिद्धेदि इमेहि वेरिं॥56॥

अन्वयार्थ—**(दारा-हिदू-पंडिद-णंदणेहिं)** पत्नी, मित्र, पंडित और पुत्र के साथ, **(माया-पिदूहिं)** माता-पिता के साथ, **(गुरु-रक्खगेहिं)** गुरु और रक्षा करनेवालों के साथ तथा **(पडिवेसिणेहिं)** प्रतिवेसिन अर्थात् पड़ौसी के साथ **(वेरं ण कुज्जा)** बैर नहीं करना चाहिये; क्योंकि **(इमेहि वेरिं)** इनके साथ बैर करनेवाले को **(दुक्खं हि सिद्धेदि)** दुःख ही प्राप्त होता है॥56॥

भावार्थ—यद्यपि जीवन में बैर से दुःख की ही प्राप्ति होती है, फिर भी विशेष करके कुछ व्यक्ति विशेषादि से बैर होने के कारण जीवन में दुःख ही दुःख पैदा हो जाते हैं, इस दुःखहरण नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—नौ लोगों से कभी भी बैर-विरोध नहीं करना चाहिये। **पत्नी, हितकारी मित्र, पंडितवर्ग, सुपुत्र, माता, पिता, गुरुजन, सदा रक्षा करनेवाला और पड़ौसी इन नौ लोगों से कभी भी बैर नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनके साथ किया गया बैर निरन्तर दुःखों को ही बढ़ानेवाला होता है।** अतः बैर कभी भी न करें खासकर पत्नी आदि से॥56॥

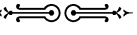

अब यहाँ इस नीति को बता रहे हैं कि किसका क्रोध कैसे शान्त किया जा सकता है?

(उपजाति)

वीसासदो सामदु मित्तकोहं, मोणेण णिच्चं किल अप्पकोहं।
धणण्ण-दाणेण हि विप्पकोहं, वाणी-पिएणं पुणवेस्स-कोहं॥57॥
समादरेणं पुण छत्त-कोहं, उवेक्ख-भावेण कलत्त-कोहं।
एया-बलेणं लहु-सुद्द-कोहं, किच्चा पणामं गुरु-पुज्ज-कोहं॥58॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(णिच्चं)** हमेशा **(मित्तकोहं वीसासदो)** मित्र के क्रोध को विश्वास के द्वारा **(सामदु)** शान्त करना चाहिये, **(अप्पकोहं मोणेण किल)** आत्मक्रोध अर्थात् स्वयं के क्रोध को मौन से ही शान्त करना चाहिये, **(धण-अण्ण-दाणेण हि विप्प-कोहं)** धन और अन्न देने से ही विप्र और ब्राह्मण के क्रोध को **(पुणवेस्स-कोहं वाणी-पिएणं)** तथा पुरवाम अर्थात् वैश्यों के क्रोध को प्रिय वाणी से शान्त करना चाहिये। **(पुण)** पुनः **(छत्त-कोहं)** क्षात्र अर्थात् क्षत्रिय के क्रोध को **(समादरेणं)** समादर के द्वारा, **(कलत्त-कोहं)** कलत्र अर्थात् पत्नी के क्रोध को **(उवेक्ख-भावेण)** उपेक्षा-भाव के द्वारा, **(लहु-सुद्द-कोहं)** लघु मनुष्य और शूद्रों के क्रोध को **(एया-बलेणं)** एका अर्थात् संगठन और शक्ति के द्वारा और **(गुरु-पुज्ज-कोहं)** गुरु और पूज्यों के क्रोध को **(पणामं किच्चा)** प्रणाम करके **(सामदु)** शान्त करना चाहिये॥**57-58**॥

भावार्थ—भिन्न-भिन्न प्रकार के, भिन्न-भिन्न स्वभाव के लोगों को जब

क्रोध आता है तब युक्ति और बुद्धि के प्रयोग के माध्यम से उसको शान्त किया जाता है, इस शाम नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**मित्र को जब भी क्रोध आये तो उसे विश्वास और श्रद्धा के माध्यम से शान्त करें, स्वयं को उत्पन्न हुये क्रोध को मौन के माध्यम से शान्त करें, जब कभी ब्राह्मण को क्रोध आये तो उसे धन और स्वादिष्ट अन्न देकर शान्त करें, वैश्य वर्ग अर्थात् व्यापारी वर्ग के क्रोध को मधुरवाणी के माध्यम से शान्त करें, क्षत्रियवर्ग के क्रोध को आदर और सम्मान के माध्यम से शान्त करें, पत्नी के क्रोध को उपेक्षा भाव के माध्यम से अर्थात् नज़रअंदाज़गी से शान्त करें, छोटे लोग और शूद्रवर्ग के क्रोध को संगठन और शक्ति के माध्यम से शान्त करें और पूज्य पुरुषों तथा गुरुजनों के क्रोध को नमस्कार करके शान्त करें।** क्रोध को हमेशा नीति और विवेक से जीतने का प्रयास करना चाहिये, क्रोध से नहीं। अग्नि को नीर से शान्त किया जाता है अग्नि से नहीं॥**57-58**॥

विनय और दान से क्या-क्या लाभ हैं? अब यहाँ इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

दाणं समीवे विणयो य जेसिं, दासो सया कप्पतरू हि तेसिं।
चिंतामणी चारु-करम्हि तेसिं, जसो व कित्ती णिगडं च तेसिं॥59॥

अन्वयार्थ—**(जेसिं)** जिनके **(समीवे)** समीप **(विणयो य दाणं)** विनय और दान हैं, **(कप्पतरू तेसिं)** कल्पवृक्ष उनका **(सया हि दासो)** सदा ही दास/सेवक है, **(च)** और **(चिंतामणी चारु-करम्हि तेसिं)** चिंतामणि रत्न उनके सुन्दर हाथों में है **(व)** अथवा **(जसो कित्ती तेसिं णिगडं)** यश और कीर्ति उनके निकट ही हैं॥59॥

भावार्थ—विनय-भाव और दान-क्रिया से जीवन में अनेकों उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं, इस नीति वाक्य को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**जिन मनुष्य के हृदय में विनय का भाव और दानशीलता वास करती है, उनके समीप में यश और कीर्ति सदा रहती है। कल्पवृक्ष मानो उनका सेवक ही बन जाता है और इनके साथ चिंतामणि रत्न उनके सुन्दर हाथों में सदा विद्यमान रहता है।** अतः नीतिज्ञ मनुष्यों को विनयभाव से जीवन व्यतीत करना चाहिये और दान हमेशा सत्स्थानों में करते रहना चाहिये॥59॥

सज्जनों के लिये जो गुण हैं, वो ही दुर्जनों के लिये अवगुण हैं; अब यहाँ इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

विज्जा तवो वित्त-सरीर-दाणं, जुवा-सुवंसो अखलस्स विज्जा।
विज्जा तवो वित्त-सरीर-दाणं, जुवा-सुवंसो हि तुडी खलस्स॥60॥

अन्वयार्थ—**(विज्जा तवो)** विद्या, तप **(वित्त-सरीर-दाणं)** धन अर्थात् वित्त, शरीर, दान, **(जुवा-सुवंसो)** युवावस्था और उच्चकुल; ये सात **(अखलस्स विज्जा)** अखल अर्थात् सज्जन के लिये विद्या हैं, गुण हैं एवं **(विज्जा तवो वित्त-सरीर-दाणं)** विद्या, तप, धन, शरीर, दान, **(जुवा-सुवंसो)** युवावस्था और उच्चकुल, ये सातों **(हि)** ही **(खलस्स तुडी)** खल पुरुषों के लिये दुर्गुण हैं॥60॥

भावार्थ—जो बातें या अवस्थायें सज्जनों के लिये गुण हैं, वो बातें या अवस्थायें दुज्जनों के लिये अवगुण का कारण बन जाती हैं, इस नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**विद्या अर्थात् ज्ञान, तप, धन-सम्पत्ति, सुन्दर बलवान् शरीर, दान, युवावस्था और उच्चकुल; ये सात अवस्थायें अगर सज्जनों को प्राप्त हो जाये तो उनके लिये गुणों का काम करती हैं** अथवा गुणों की वृद्धि का काम करती हैं, लेकिन **विद्या, तप, धन, सुंदर बलवान् शरीर, दान, युवावस्था और उच्चकुल; ये सात अवस्थायें अगर दुष्टों को प्राप्त हो जायें तो उनके लिये अवगुणों को बढ़ाने का काम करती हैं।** अतः विद्या, धन, उच्चकुल आदि बुरे लोगों की बुराई बढ़ाते हैं और अच्छे लोगों की अच्छाइयाँ बढ़ाते हैं॥60॥

किसके समीप लक्ष्मी का वास नहीं होता है? अब यहाँ इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

कम्मेहि दुक्खेहि सुपीडिदो जो, पमाद-आलस्स-जुद-णत्थिगो वा।
उस्साह-रित्तो विसयाणुरत्तो, सी-लच्छि-वासो ण घरम्हि तस्स॥61॥

अन्वयार्थ—(**जो**) जो (**कम्मेहि दुक्खेहि सुपीडिदो**) कर्मों से और दुःखों से अत्यन्त पीड़ित है, (**पमाद-आलस्स-जुद**) प्रमादी, आलसी है, (**णत्थिगो**) नास्तिक है, (**उस्साह-रित्तो**) उत्साह रहित है (**वा**) अथवा (**विसय-अणुरत्तो**) विषयों में अनुरक्त है, (**तस्स घरम्हि**) उसके घर में (**सी-लच्छि-वासो ण**) श्री और लक्ष्मी का वास नहीं होता है॥61॥

भावार्थ—लक्ष्मी, सम्पत्ति अथवा वैभव के बिना मनुष्य का जीवन कष्टप्रद-सा हो जाता है, इसलिये आपके जीवन में लक्ष्मी का सदा वास रहे इस हेतु यहाँ नीति कह रहे हैं कि—**जो कर्मों से अत्यन्त पीड़ित हो, जो दुःखों से अत्यन्त पीड़ित हो, जो प्रमादी हो, आलसी हो अर्थात् कुशल क्रियाओं में अनादर भाव रखता हो, नास्तिक हो, जो उत्साह-शक्ति से रहित हो और जो व्यसनों के साथ-साथ पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त हो; उसके घर में कभी भी लक्ष्मी का निवास नहीं होता है।** अतः जिन्हें भी सम्पत्ति या वैभव की चाह हो उन्हें इन सात बातों का हमेशा ध्यान रखना चाहिये॥61॥

मित्र कभी शत्रु न बन जाये अथवा मित्र को मित्र बनाये रखने के उपाय क्या हैं? अब यहाँ इस नीति को बता रहे हैं—

(उपजाति)

मित्तस्स माणं मिलणे कुणेहि, पिट्ठस्स पच्छा सइ से पसंसं।
आवस्सगत्ते अणुदाणदं च, कदावि मित्तं णवि हुज्ज सत्तू॥62॥

अन्वयार्थ—(**मिलणे**) मिलने पर (**मित्तस्स माणं कुणेहि**) मित्र का सम्मान करो, (**पिट्ठस्स पच्छा**) पीठ के पीछे (**सइ से पसंसं**) सदा उसकी प्रशंसा (**कुणेहि**) करो (**च**) और (**आवस्सगत्ते अणुदाणदं**) आवश्यकता पड़ने पर उसकी अनुदानता अर्थात् सहायता करो; (**मित्तं कदावि**) मित्र कभी भी (**सत्तू णवि हुज्जा**) शत्रु नहीं होगा॥62॥

भावार्थ—मित्र को कभी शत्रु नहीं बनने देना चाहिये, मित्र को हमेशा मित्र ही बनाकर रखना चाहिये, इस मैत्री पूर्ण नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—मित्र को मित्र बनाकर रखने के तीन मुख्य उपाय हैं। **1. मित्र से मिलने पर उसका सम्मान करना चाहिये, 2. पीठ के पीछे सदा मित्र की प्रशंसा करना चाहिये और 3. आवश्यकता पड़ने पर परिस्थिति आने पर मित्र की सहायता करना चाहिये; ऐसा करने से मित्र कभी भी शत्रु नहीं बनता॥62॥**

दूरियों से सज्जनों की मित्रता नहीं टूटती; अब यहाँ इस नीति को बता रहे हैं—

(इन्द्रवज्रा)

कत्तो दिणेसो कमलं च कत्तो, कत्तो ससी अंबुधि-वड्ढि कत्तो।
कत्तो मयूरो मिहिरो य कत्तो, णो भद्द-मेत्ती विलगा फिडेदि॥63॥

अन्वयार्थ—**(दिणेसो कत्तो)** सूर्य कहाँ **(च)** और **(कमलं कत्तो)** कमल कहाँ? **(ससी कत्तो)** चन्द्रमा कहाँ और **(अंबुधि-वड्ढि कत्तो)** समुद्र की वृद्धि कहाँ? **(मिहिरो कत्तो)** मिहिर अर्थात् मेध कहाँ **(य)** और **(मयूरो कत्तो)** मयूर कहाँ? सही बात है **(विलगा)** दूरी के कारण **(भद्द-मेत्ती)** भद्र-पुरुषों की मैत्री **(णो)** नहीं **(फिडेदि)** टूटती है॥63॥

भावार्थ—दूरियाँ होने पर भी सज्जन लोग कभी अपनी सज्जनता नहीं छोड़ते साथ ही साथ सज्जनों की मैत्री भी दूरियों से नहीं टूटती है, इस नीतिज्ञान का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**कहाँ तो आकाश में सूर्य है और कहाँ पृथ्वी तल पर कमल है फिर भी कमल को सूर्य खिला देता है, वैसे ही कहाँ तो चन्द्रमा है और कहाँ तो समुद्र है फिर भी चन्द्रमा समुद्र को बढ़ा देता है तथा हि कहाँ तो गगन में कृष्ण मेघ और कहाँ वसुंधरा पर मयूर फिर भी मेघ मयूर को प्रसन्न करके नचा देते हैं; ठीक ही है दूरियाँ कितनी ही क्यों न हो मगर सज्जन लोगों की मैत्री कभी नहीं टूटती है॥63॥**

अच्छे मित्र के लक्षण क्या-क्या हैं? अब यहाँ इस नीतिवाक्य को बता रहे हैं—

(इन्द्रवज्रा)

पावस्स वित्तीय णिरंभदे जो, जुंजेदि सेट्ठे हिदयारि-कज्जे।
अण्णेहि से गुत्तवयं गुवेदि, विज्जा गुणा संपयडेदि णिच्चं॥64॥
संगं ण मुंचेदि विवत्तियाले, दिंतेदि वामे समए धणं च।
उक्किट्ठ-मित्तस्स महेसरेहिं, सव्वाणि चिण्हाणि इमाणि उत्तं॥65॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(जो)** जो **(पावस्स वित्तीय णिरंभदे)** पाप की प्रवृत्ति से रोकता है, **(सेट्ठे हिदयारि-कज्जे जुंजेदि)** श्रेष्ठ और हितकारी कार्य में लगाता है, **(से)** उसकी अर्थात् मित्र की **(गुत्तवयं अण्णेहि गुवेदि)** गुप्त बात को दूसरों से छिपाता है, **(णिच्चं)** हमेशा **(विज्जा गुणा संपयडेदि)** मित्र की विद्या तथा गुणों को प्रकट करता है, **(विवत्तियाले संगं से ण मुंचेदि)** विपत्ति के काल में मित्र का संग नहीं छोड़ता **(च)** और **(वामे समए)** विपरीत समय आने पर **(धणं दिंतेदि)** धन भी देता है; **(इमाणि सव्वाणि)** ये सभी **(उक्किट्ठ-मित्तस्स चिण्हाणि)** उत्कृष्ट मित्र के चिह्न हैं, ऐसा **(महेसरेहिं उत्तं)** महेश्वरों ने कहा है॥64-65॥

भावार्थ—हर व्यक्ति और वस्तु को पहचानने के लिये उसके कुछ विशेष चिह्न भी होते हैं, ऐसे ही अच्छे और सच्चे मित्र की पहचान करने के लिये भी विशेष छह चिह्न नीतिकारों ने कहे हैं, जिन्हें जानकर आप सच्चे और अच्छे मित्र की खोज कर सकते हैं। **1. अच्छा मित्र हमेशा अपने मित्र को पाप की क्रियाओं से रोकता है, 2. श्रेष्ठ और सभी का हित करनेवाले कामों में**

अपने मित्र को लगता है, 3. अपने मित्र की गुप्त बातों को दूसरों से छिपाता है जगजाहिर नहीं करता है, 4. हमेशा अपने मित्र के गुणों को उसकी विद्या को प्रकट करके उसकी प्रशंसा करता है, 5. विपत्ति के काल में अशुभ कर्मों के उदय होने पर मित्र का साथ नहीं छोड़ता है और 6. विपरीत समय में धन आदि देकर उसकी मदद भी करता है; ये सभी अच्छे मित्र के चिह्न हैं। इन्हें देखकर इन्हें जानकर ही किसी से मित्रता करना चाहिये॥64-65॥

चलने का राग छोड़ो.....

मुक्ताकाश में
उड़ती हुई चिड़िया को देखकर
एक मुसाफिर ने पूछा-
क्या मैं भी कभी
तुम जैसा उड़ पाऊँगा?
चिड़िया कुछ देर रुकी
और उड़ती बनी
लेकिन वह बोल गई-
मित्र! मेरे जैसे
तुम भी आकाश में उड़ सकते हो
शर्त सिर्फ इतनी है
तुम्हें चलने का राग छोड़ना पड़ेगा।

किनके सामने चुप रहना चाहिये? अब यहाँ इस विशेष नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

अदीव-णाणिं च अदीव-जोगिं, अणेग-मूढा गुरु-सत्तु-रायं।
इमाण दिज्जा पडिउत्तरं ण, कोहं सुणिज्जा किल तज्जणं च॥66॥

अन्वयार्थ—**(अदीव-णाणिं)** अतीव/अधिक ज्ञानी को, **(अदीव-जोगिं)** अतीव तपस्वी को, **(अणेग-मूढा)** बहुत सारे मूर्खों को, **(गुरु-सत्तु-रायं च)** गुरु, शत्रु और राजा को **(पडिउत्तरं ण दिज्जा)** प्रति-उत्तर नहीं देना चाहिये **(च)** अपितु **(इमाण)** इनके **(कोहं तज्जणं)** क्रोध और तर्जना को अर्थात् भर्त्सना को **(किल सुणिज्जा)** निश्चय से सुन लेना चाहिये॥66॥

भावार्थ—इस जीवन में कुछ लोगों के सामने चुपचाप रहने से आपकी इज्जत और कीमत बढ़ जाती है और इस बात को नज़रअंदाज़ करने से कीमत समाप्त भी हो जाती है। किन लोगों के सामने चुप रहना श्रेष्ठ है; इस विशेष गुणवर्धक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि छह मनुष्यों के सामने विशेष करके मौन रहना चाहिये। नीतिकार कहते हैं कि—**आपसे अधिक विद्वान को, अधिक तपस्वी को, बहुत संख्या में उपस्थित मूर्खों को, राजा, शत्रु और गुरुओं को कभी भी प्रतिउत्तर अर्थात् जवाब नहीं देना चाहिये। साथ ही साथ इन छहों के द्वारा दी गई भर्त्सना और किये गये क्रोध को भी**

शान्तिपूर्वक चुपचाप सुन लेना चाहिये। ऐसा करने से जीवन में शान्ति की वृद्धि और संक्लेशता की हानि होती है। यद्यपि यह नीति जीवन में उतारना कठिन है तथापि पुरुषार्थ पूर्वक इसका अनुसरण करना चाहिये॥66॥

बुद्धिमत्ता .....

समय
बदलने पर भी
अपने आदर्शों को नहीं बदलना
मैं तो इसे ही
बुद्धिमत्ता मानता हूँ।

मूर्खों के बीच विद्वानों की क्या दशा होती है? अब यहाँ इस नीति को बता रहे हैं—

(उपजाति)

विण्णाण-विज्जा-कुसलाण णाणी, माणं तु मूढे करदि ट्ठिदी सिं।
अंधाण मज्झे हि सुलोयण व्व, सुधम्म-गंथो व्व य णत्थिगाणं॥67॥

अन्वयार्थ—(**विण्णाण**) विद्वत्ता, (**विज्जा-कुसलाण**) विद्या और कुशल अर्थात् विद्वान का (**माणं णाणी करदि**) मान-सम्मान विद्वान ही करता है, (**मूढे सिं ट्ठिदी तु**) मूर्खों के बीच में उनकी दशा या स्थिति तो वैसी ही होती है जैसे कि (**अंधाण मज्झे हि**) अंधों के बीच में (**सुलोयण व्व**) किसी सुन्दरी की (**य**) अथवा (**णत्थिगाणं मज्झे**) नास्तिकों के बीच में (**सुधम्म-गंथो व्व**) सुधर्म-ग्रन्थों की होती है॥67॥

भावार्थ—हर कोई हर किसी की कीमत या कद्र करना नहीं जानता, हीरे की कीमत जौहरी ही जानता है, इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि— **विद्वान्, विद्वत्ता और विद्या की कद्र विद्वान ही कर पाते हैं मूर्ख नहीं। मूर्खों के बीच में इन तीनों की दशा वैसी ही होती है जैसे कि अंधों के बीच में किसी सुन्दरी की होती है अथवा नास्तिकों के बीच में धर्म-ग्रन्थों की जो स्थिति होती है वो दशा मूर्खों के बीच इनकी होती है अर्थात् इनका विनाश ही होता है॥67॥**

उन्नति के चार सूत्र क्या हैं? अब यहाँ इस नीति को बताते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

इच्छेसि तं तो जदि अप्प-वड्ढिं, सव्वत्थ पीदिं तह कित्ति-सेवं।
कण्णस्स वुप्पण्ण-मणो ण होज्जा, कत्तव्व-सड्ढा-सुवियारणस्स॥68॥

अन्वयार्थ—(**जदि**) यदि (**तं**) तुम (**अप्प-वड्ढिं**) आत्मवृद्धि अर्थात् आत्मोन्नति (**सव्वत्थ पीदिं**) सर्वत्र प्रीति (**तह**) तथा (**कित्ति-सेवं**) कीर्ति और सेवा (**इच्छेसि**) चाहते हो (**तो**) तो (**कण्णस्स**) कान के, (**कत्तव्व-सड्ढा-सुवियारणस्स**) कर्तव्य के, श्रद्धा के और विचारण अर्थात् विचारों के (**वुप्पण्ण-मणो ण होज्जा**) कभी भी कच्चे नहीं होना चाहिये॥68॥

भावार्थ—अपनी उन्नति का विचार विवेकी पुरुषों को सतत करते रहना चाहिये तथा आत्मोन्नति के सम्यक् उपाय भी हमें सतत खोजते रहना चाहिये, इस आत्मोन्नति प्रदायक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**हे भव्य! यदि तुम आत्मगुणों की वृद्धि, सर्वत्र प्रीति, सर्वत्र कीर्ति और सभी के द्वारा सेवा करवाना चाहते हो तो कभी श्रद्धा, कर्तव्य, विचार और कान के कच्चे नहीं होना।** जो मनुष्य कान, कर्तव्य, श्रद्धा और विचार के कच्चे होते हैं, उनका भविष्य दुःखमय रहता है। अतः इन चारों के पक्के रहना चाहिये॥68॥

रिश्ते, किस्मत, जीवन, धनादि को शुद्ध करने का क्या उपाय है? अब यहाँ इस आवश्यक नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(इन्द्रवज्रा)

ण्हाणं तणं चेव धणं च दाणं, झाणं मणं संमिलणं खमा वा।
जीवं च जोगो विणयो य अप्पं, सुद्धेदि भग्गं च परोवयारो॥69॥

अन्वयार्थ—**(ण्हाणं तणं सुद्धेदि)** स्नान तन को शुद्ध करता है **(च)** और **(दाणं धणं)** दान धन को **(चेव)** और **(झाणं मणं)** ध्यान मन को **(च)** और **(खमा संमिलणं)** क्षमा संबंधों को **(य)** और **(विणयो अप्पं)** विनय आत्मा को **(च) (जोगो जीवं)** योग जीवन को **(वा)** और **(परोवयारो भग्गं)** परोपकार भाग्य को शुद्ध करता है॥69॥

भावार्थ—अशुद्धता किसी भी प्रकार की हो हानिकारक ही होती है। इसलिये तन, धन, आत्मा, जीवन आदि को शुद्ध करने का उपाय सतत खोजते रहना चाहिये, इस जीवनोपयोगी और जीवन के लिये आवश्यक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**स्नान से तन शुद्ध होता है, दान से धन शुद्ध होता है, ध्यान से मन शुद्ध होता है, क्षमाभाव से रिश्ते और संबंध शुद्ध होते हैं, योग अर्थात् संयम से जीवन शुद्ध होता है, विनय धारण करने से आत्मा शुद्ध होती है और परोपकार अर्थात् दया भावों से भाग्य/किस्मत शुद्ध होती है।** अतः जिन महानुभावों को तन, धन, मन, संबंध, जीवन, भाग्य और आत्मा की शुद्धि का भाव हो; उन्हें इन उपायों को अहर्निश अपने चित्त में रखना चाहिये॥69॥

ऐसे कौन-कौन हैं जो कभी दूसरों का दुःख नहीं समझते हैं? अब यहाँ इस नीति का कथन कर रहे हैं—

(इन्द्रव्रजा)

वेस्सा य भिक्खू जमराय-राया, अग्गी कसाई लहु-बालगो वा।
राजस्स-लद्धो णवि दस्सु-लोही, वेदंति णूणं अवराण दुक्खं॥70॥

अन्वयार्थ—(**वेस्सा**) वेश्या, (**भिक्खू**) भिखारी, (**जमराय-राया य**) यमराज और राजा, (**अग्गी**) अग्नि, (**कसाई**) कषायी, (**लहु-बालगो**) छोटा बच्चा, (**राजस्स-लद्धो**) राजस्व इकट्ठा करनेवाला, (**दस्सु-लोही वा**) चोर और लोभी; (**णूणं**) निश्चय से ये (**अवराण दुक्खं णवि वेदंति**) दूसरों के दुःख नहीं समझते हैं॥70॥

भावार्थ—सज्जन पुरुष सभी का सुख-दुःख समझते हैं और इसीलिये सर्वप्रिय भी होते हें, किन्तु कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो किसी का दुःख कभी नहीं समझते हैं; ऐसे लोगों से अपनी आत्मरक्षा हेतु इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**वेश्या, भिखारी, यमराज अर्थात् मृत्यु, राजा, अग्नि, कषायी अर्थात् बहु जीवों की हिंसा करनेवाला, छोटे बच्चे, कर वसूल करनेवाला, चोर-लुटेरे और लोभ करनेवाले; ये लोग निश्चय से दूसरों के जीवन में उपस्थित दुःख-पीड़ा को नहीं समझते हैं।** अतः इनसे हमेशा दूरी बनाकर रखना चाहिये और इनके उपस्थित होने पर धीरज धारण करना चाहिये॥70॥

लक्ष्मी, कीर्ति, विद्या और बुद्धि किसके अनुसार चलते हैं? अब यहाँ इस नीति को कहते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

उज्जोग-गामी हवदे सुलच्छी, दाणाणुगामी हवदे सुकित्ती।
अब्भास-गामी हवदे सुविज्जा, कम्माणुगामी हवदे सुबुद्धी॥71॥

अन्वयार्थ—(**सु-लच्छी**) सम्पत्ति अर्थात् लक्ष्मी (**उज्जोग-गामी**) उद्योग की अनुगामी (**हवदे**) होती है, (**सुकित्ती**) यशःकीर्ति (**दाण-अणुगामी हवदे**) दान की अनुगामी होती है, (**सु-विज्जा**) सम्यक् विद्या (**अब्भास-गामी हवदे**) अभ्यास की अनुगामी होती है और (**सुबुद्धी**) अच्छी बुद्धि (**कम्म-अणुगामी हवदे**) कर्म की अनुगामी होती है॥71॥

भावार्थ—लक्ष्मी, कीर्ति, विद्या और बुद्धि किसके अनुसार चलती है इसका ज्ञान होना आवश्यक है अन्यथा इनकी प्राप्ति दुर्लभ है, इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**लक्ष्मी उद्योग के अनुसार चलती है** अर्थात् जितना परिश्रम करोगे उतनी ही लक्ष्मी की वृद्धि होती; **यश और कीर्ति दान के अनुसार आती है** अर्थात् धन का सदुपयोग दान के माध्यम से करने पर यश और कीर्ति की प्राप्ति होती है; **विद्या अभ्यास के अनुसार प्राप्त होती है** अर्थात् जितना अधिक अभ्यास करोगे उतनी अधिक और सुंदर विद्या की प्राप्ति होगी और **अच्छी बुद्धि कर्म के अनुसार ही प्राप्त होती है** अर्थात् जैसे कर्म का उदय आता है मनुष्य की बुद्धि भी तदनुसार होती जाती है। शुभ-कर्मोदय होगा तो बुद्धि अच्छी

चलेगी और अशुभ-कर्मोदय होगा तो बुद्धि विपरीत कार्यों में चलेगी। अतः **जिन्हें लक्ष्मी चाहिये वो परिश्रम करें, जिन्हें कीर्ति चाहिये वो दान करें, जिन्हें विद्या चाहिये वो अभ्यास करें और जिन्हें बुद्धि चाहिये वो अच्छे कर्म करें॥71॥**

भिन्नत्व .....

जहाँ मैं हूँ,
वहीं तुम भी हो
मगर
मैं जो कुछ भी हूँ
उसमें तुम नहीं हो,
तुम जो कुछ भी हो
उसमें मैं नहीं हूँ।

शत्रु को नष्ट करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? अब यहाँ इस नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

साधीण-सत्तूहि रिवुं हि अण्णं, घादिज्ज सूलं तु पगट्ठिदं हि।
फेडंति सूलादु ठिदादु हत्थे, करंति कज्जं इण णीदिवंता॥72॥

अन्वयार्थ—**(साधीण-सत्तूहि हि)** स्वयं के आधीन शत्रुओं के द्वारा ही **(अण्णं रिवुं)** अन्य शत्रु को **(घादिज्ज)** नष्ट करना चाहिये, **(तु)** क्योंकि **(पगट्ठिदं सूलं)** पैर में लगे काँटे को **(हत्थे ठिदादु सूलादु फेडंति)** हाथ में स्थित काँटे से ही निकालते हैं; **(इण कज्जं)** ऐसा कार्य **(णीदिवंता करंति)** नीतिवान मनुष्य ही कर पाते हैं॥72॥

भावार्थ—जीवन में शत्रु उपस्थित हो जायें तो जीवन कष्टमय हो जाता है और उस शत्रु को नष्ट करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय समय रहते सोच लेना चाहिये; ऐसे सम्यक् उपाय रूप नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**दूसरे शत्रुओं को नष्ट करने के लिये अपने वश किये शत्रु का प्रयोग करके अर्थात् अपने आधीन शत्रुओं के द्वारा अन्य शत्रुओं को नष्ट करना चाहिये, क्योंकि पैर में लगे काँटे को अपने हाथ में स्थित दूसरे काँटे से ही निकाला जाता है अपने हाथों से नहीं।** किन्तु ऐसी विशिष्ट बुद्धि नीतिवान मनुष्य के अंदर ही पायी जाती है। अतः जीवन में उपस्थित कष्टों को नष्ट करने के लिये नीतिवान बनना चाहिये॥72॥

दीर्घायु होने का क्या कारण है? अब यहाँ इस नीतिवाक्य का कथन कर रहे हैं—

(इन्द्रवज्रा)

सद्धाजुदो चेव सुधम्मसीलो, ईसा-विहीणो धण-पाव-चागी।
अणप्प-वस्सं जियदे स जीवो, रित्तो व जुत्तो सुह-लक्खणेहिं॥73॥

अन्वयार्थ—**(सद्धाजुदो)** जो श्रद्धा से युक्त है, **(सुधम्मसीलो)** सच्चे धर्म का अनुयायी है, **(ईसा-विहीणो)** ईर्ष्या रहित है **(धण-पाव-चागी च एव)** धन तथा पाप का ही त्यागी है, **(स जीवो)** वह मनुष्य **(अणप्प-वस्सं जियदे)** अनल्प वर्षों तक अर्थात् अधिक वर्षों तक जीवित रहता है, **(व)** फिर चाहे वह **(हीणो जुत्तो सुह-लक्खणेहिं)** शुभ लक्षणों से युक्त हो या फिर रिक्त हो॥73॥

भावार्थ—हर मनुष्य को दीर्घायु होने की चाह रहती है, मगर दीर्घायु प्राप्त कैसे हो? इन उपायों के ज्ञान के अभाव में मनुष्य अल्पायु में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है; यहाँ इस नीति में दीर्घायु की प्राप्ति के उपायभूत नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**जो सच्ची श्रद्धा से युक्त रहता है, सच्चे धर्म में अर्थात् अहिंसामय निष्कलंक धर्म में अपना मन लगाता है, कभी भी किसी से ईर्ष्या नहीं करता है तथा समय-समय पर धन और पाप का त्याग करता रहता है, ऐसा मनुष्य चाहे शुभ लक्षणों से सहित हो अथवा रहित हो, नियम से दीर्घायु होता है; अधिक जीनेवाला ही होता है।** अतः इन चारों सम्यगुपायों का आश्रय लेकर दीर्घायु बनना हर नीतिवान मनुष्य का कर्तव्य है॥73॥

कभी भी किसी के भी दोष नहीं प्रकट करना चाहिये, अब यहाँ इस नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

अण्णस्स जीवस्स ण सड्ढ दोसे, जावं सयं तं ण पुलिज्ज दोसं।
वे दंसणे तं पि विसरिज्ज सम्मं, कुदो वि एवं पयडं ण कुज्जा॥74॥

अन्वयार्थ—(**अण्णस्स जीवस्स**) किसी अन्य मनुष्य के (**दोसे ण सड्ढ**) दोष अर्थात् बुराई पर विश्वास मत करो, (**जावं सयं**) जब तक आप स्वयं (**तं दोसं ण पुलिज्ज**) उस दोष को देख न लो (**एवं**) तथा (**वे दंसणे**) सचमुच बुराई दिखने पर (**पि**) भी (**तं सम्मं विसरिज्ज**) उसको भली प्रकार से भूल जाओ, साथ ही साथ, (**कुदो वि पयडं ण कुज्जा**) किसी से भी प्रकट नहीं करो॥74॥

भावार्थ—किसी के भी दोषों या बुराइयों को जानकर उसके लिये दूसरों के समक्ष प्रस्तुत/प्रकट करना स्वयं में एक दोष है। किसी के दोष मालूम चलने पर उन्हें प्रकट नहीं करना चाहिये और सहसा उन पर विश्वास भी नहीं करना चाहिये, इस स्व-पर रक्षात्मक नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**किसी भी मनुष्य की बुराइयों पर शीघ्र ही विश्वास मत कर लेना, जब तक आप स्वयं उन बुराइयों को उसमें देख न लो और यदि वे बुराइयाँ या दोष सचमुच उस मनुष्य में देखने में आ रही हों तो दो काम अवश्य करना चाहिये–पहला तो उसे भूल जाना चाहिये और दूसरा किसी भी परिस्थिति में किसी से भी उस**

दोष या बुराई को प्रकट नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से आप अपनी और उसकी रक्षा कर सकते हैं, उसकी रक्षा अपवाद न करके और अपनी रक्षा पाप न करके। अतः सर्वप्रथम तो दोष देखना ही पाप है फिर उन दोषों को जगजाहिर करना उससे बड़ा पाप है, स्वयं में नीतिज्ञ बनें और अपनी और परायों की रक्षा करें॥74॥

महानता के लिये.....

पापी को माफ करना,
असुंदर को सुंदर निगाहों से देखना,
हारे हुये की प्रशंसा करना,
असंतुष्ट को संतुष्ट करना,
छोटों को अपने समान कर लेना;
ये कुछ ऐसी बातें हैं
जो आपके व्यक्तित्व को
महान बनाती हैं।

किन कारणों से मनुष्य की आयु घटती है? अब यहाँ इस नीति का व्याख्यान कर रहे हैं—

(उपजाति)

अच्चंत-माणं तह तिव्व-कोवो, संमित्त-दोहं बहु-भासणं च।
अचाग-भावो सग-कुक्खि-चिंता, णूणं रुदंते मणुयस्स आउं॥75॥

अन्वयार्थ—**(अच्चंत-माणं)** अत्यन्त-मान कषाय **(तह)** तथा **(तिव्व-कोवो)** तीव्र कोप, **(संमित्त-दोहं)** सगे मित्र के साथ द्रोह, **(बहु-भासणं)** बहुत अधिक बोलना, **(अचाग-भावो)** अत्याग का भाव अर्थात् संग्रह वृत्ति **(च)** और **(सग-कुक्खि-चिंता)** अपना पेट पालने की चिंता, ये कार्य **(णूणं)** निश्चय ही **(मणुयस्स आउं रुदंते)** मनुष्य की आयु को घटा देते हैं॥75॥

भावार्थ—मनुष्य प्राप्त आयु को अपनी ही त्रुटियों से घटाकर अल्पायु में ही मर जाता है, यहाँ इस नीति में इसी बात को कह रहे हैं कि—मनुष्य अपनी आयु को मुख्य छह कारणों के कारण घटा देता है। **1. अत्यन्त तीव्र मान कषाय करके, 2. तीव्र क्रोध का भाव धारण करके, 3. अपने सगे मित्र के साथ धोखाधड़ी अर्थात् द्रोह करने से, 4. बहुत अधिक बोलने से, 5. त्याग का भाव करने से अर्थात् परिग्रह के संचय की तीव्र भावना करने से और 6. सदा ही अपना पेट पालने की अशुभ चिंता करने से; मनुष्य अपनी प्राप्त आयु को घटाकर अल्प कर लेता है।** अतः जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य को अपनी आयु का घात करनेवाली इन छह तीखी तलवारों से अपनी रक्षा करते रहना चाहिये॥75॥

क्वचित् निंदक भी श्रेष्ठ है; यहाँ अब इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

माया-पिदू ता मल-मुत्त-वत्थं, धोवंति जीहाय किल णिंदगा ता।
माया-पिदूओ अदु णिंदगा वि, वरा वरो जादु स णिंदगो वि॥76॥

अन्वयार्थ—**(माया-पिदू)** माता-पिता **(ता)** तो **(मल-मुत्त-वत्थं किल धावंति)** मल, मूत्र और वस्त्र को ही धोते हैं, **(ता)** किन्तु **(णिंदगा जीहाय धोवंति)** निंदक तो जिह्वा से ही मलादि धोते हैं, **(अदु)** अतः **(माया-पिदूओ)** माता-पिता से **(णिंदगा वि वरा)** निंदक भी श्रेष्ठ है; **(जादु)** क्वचित् **(स णिंदगो वि वरो)** वह निंदक किसी अपेक्षा से श्रेष्ठ है॥76॥

भावार्थ—निंदक पुरुष भी किसी अपेक्षा से अच्छा है, क्योंकि वह आपके अवगुणों को खोजकर आपके सामने प्रस्तुत करता है; इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**माता-पिता तो सिर्फ अपने हाथों के माध्यम से तुम्हारे मल, मूत्र अथवा वस्त्रादि को धोते हैं, किन्तु निंदा करने के इच्छुक मनुष्य तो अपनी जिह्वा से तुम्हारे ही मलरूपी दोषों को धोते रहते हैं; इसलिये माता-पिता से अपनी निंदा करनेवाला श्रेष्ठ हैं।** अतः किसी अपेक्षा से क्वचित् निंदक भी अच्छे हैं॥76॥

ऊँचा नाम या पहचान किसके कारण होती है? अब यहाँ इस नीति का व्याख्या करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

आलोयगादो णवि तो बिहेदि, णेदाहिणाणं खलणायगादो।
जेणावि सद्धिं खलणायगो त्ति, उच्चं हवे तस्स सयं हि णामो॥77॥

अन्वयार्थ—**(आलोयगादो)** आलोचकों से **(बिहेदि णवि)** घबराना नहीं, **(तो)** क्योंकि **(णेदा-अहिणाणं)** नायक की पहचान **(खलणायगादो त्ति)** खलनायक से ही होती है। **(जेण अवि सद्धिं)** जिनके भी साथ **(खलणायगो)** खलनायक होता है, **(तस्स णामो)** उस नायक का नाम **(सयं हि उच्चं हवे)** स्वयमेव अपने आप ऊँचा हो जाता है॥77॥

भावार्थ—ऊँचा नाम या ऊँची पहचान बनाने के कई कारण हो सकते हैं, उनमें एक कारण आपके आलोचक या निंदक भी हो सकते हैं; इस नीति का कथन करते हुये कहा कि—**आलोचक अथवा निंदक कितने ही हों उनसे कभी घबराना या डरना नहीं चाहिये, क्योंकि अच्छे नेता या नायक की पहचान करानेवाला उसका प्रतिद्वन्दी खलनायक ही होता है। आलोचक, निंदक या खलनायक जिसके भी पीछे लग जाते हैं उस नायक का नाम अपने आप ही ऊँचाइयों को छूने लग जाता है।** अतः आलोचकों और निंदकों से डरना नहीं चाहिये, अपितु उनकी बातों को गौर से सुनना चाहिये। अगर उनके द्वारा कही गई बातें सही हों तो सुधार करना चाहिये, अन्यथा उनकी उपेक्षा करनी चाहिये। राम को रावण जैसा खलनायक न मिलता तो राम जैसे नायक भी न बन पाते॥77॥

किसके बिना क्या व्यर्थ है? अब यहाँ इस ज्ञानवर्धक नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

गुणा विहा णो जदि होज्ज रूवं, विणम्मदा णो जदि होदु णाणं।
वित्तं पि मिच्छा उवओग-रित्तं, सत्थाणि मिच्छा जदि सोरियं णो॥78॥
मिच्छा सबुद्धी णवि सत्थणाणं, ण होदु सिस्सा गुरुदा हि मिच्छा।
वदं ण संती ण परोवयारो, मिच्छा हि होज्जा जदि जीवणं च॥79॥

(जुगं)

अन्वयार्थ—(**जदि**) यदि (**गुणा णो होज्जा**) गुण न होवें, तो (**रूवं विहा**) रूप व्यर्थ है, (**जदि णो विणम्मदा**) यदि विनम्रता न (**होदु**) हो, तो (**णाणं विहा**) ज्ञान व्यर्थ है, (**उवओग-रित्तं वित्तं**) उपयोग रहित धन (**पि मिच्छा**) भी व्यर्थ है, (**जदि सोरियं णो**) यदि शौर्य न हो तो (**मिच्छा सत्थाणि**) शस्त्र व्यर्थ हैं, यदि (**स-बुद्धी णवि**) स्व-बुद्धि न हो तो (**मिच्छा-सत्थणाणं**) शास्त्रज्ञान व्यर्थ है, यदि (**सिस्सा ण होदु**) शिष्य न हों तो (**गुरुदा हि मिच्छा**) गुरुता व्यर्थ ही है, (**जदि**) यदि (**वदं ण**) व्रत न हों, (**संती परोवयारो च ण होज्जा**) शान्ति और परोपकार न हो तो (**जीवणं हि मिच्छा**) जीवन ही व्यर्थ है॥78-79॥

भावार्थ—दुनिया में कई वस्तुयें कई वस्तुओं के बिना अधूरी अथवा निरर्थक-सी हो जाती हैं, इस नीति को बतलाते हुये कह रहे हैं कि—**यदि आपके**

पास कोई भी गुण न हो तो आपका सुन्दर रूप धारण करना व्यर्थ ही है; यदि आपके पास विनम्रता नहीं है तो आपका सर्वकलाओं का ज्ञान व्यर्थ है अर्थात् विनय रहित मनुष्य का ज्ञान किसी काम का नहीं है; जो धन आप उपयोग में नहीं लाते हो, वह धन भी आपके संग्रह भाव के कारण अथवा लोभभाव के कारण व्यर्थ ही है; यदि आपके पास साहस या फिर शौर्य नहीं है तो आपका शस्त्रज्ञान अथवा आपके पास शस्त्रों का होना व्यर्थ है; यदि आपके पास स्वयं की बुद्धि और स्वविवेक ज्ञान नहीं है तो आपका शास्त्रज्ञान करना व्यर्थ है; यदि आपके पास शिष्य समुदाय नहीं है अर्थात् अनुयायी या मानने वाले नहीं हों तो आपकी गुरुता व्यर्थ है और यदि आपके पास शान्ति, व्रत और परोपकार की त्रिवेणी नहीं है तो आपका सम्पूर्ण मनुष्य जीवन व्यर्थ है। अतः विनम्रता, शौर्य, स्वबुद्धि आदि के साथ-साथ शान्ति, व्रताचरण और परोपकार को जीवन में सदैव धारण करना चाहिये॥78-79॥

उत्तम पुरुषों को किसका भय रहता है? अब यहाँ इस व्यक्तित्व निर्माण की नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

णीचा भयं होदि ण जीविगादो, किदंत-भीदी कुण मज्झमा हु।
सव्वोत्तमा दु अवमाण-भीदी, अणादरादो सग-रक्खणं तु॥80॥

अन्वयार्थ—**(णीचा)** अधम पुरुषों को **(ण जीविगादो)** जीविका न होने से **(भयं होदि)** भय होता है, **(मज्झमा किदंत-भीदी हु)** मध्यम पुरुषों को कृतान्त अर्थात् मृत्यु का भय ही होता है **(दु)** किन्तु **(सव्वोत्तमा)** सर्वोत्तम पुरुषों को **(अवमाण-भीदी)** अपमान का भय होता है **(तु)** इसलिये **(अणादरादो सग-रक्खणं कुण)** अनादर से अपनी रक्षा करो॥80॥

भावार्थ—तीन प्रकार के पुरुष होते हैं उत्तम, मध्यम और अधम। इन तीनों प्रकार के पुरुषों के जीवन में भी भय उपस्थित होता है, इस नीति का व्याख्यान करते हुये कह रहे हैं कि—**अधम मनुष्यों को अपने जीवन में आजीविका न होने से भय रहता है।** आजीविका न होने पर अधम मनुष्य विह्वल हो जाते हैं। **मध्यम पुरुषों को मरण का भय होता है।** कहीं मैं मरण को प्राप्त न हो जाऊँ, इसी चिन्ता से भयभीत हुये मनुष्य मध्यम श्रेणी में आते हैं। किन्तु सर्व-उत्तम मनुष्यों को सिर्फ अपमान का भय होता है अर्थात् **उत्तम मनुष्य अपने अपमान होने से डरते हैं।** अतः सर्वविध मनुष्यों को अनादर और अपमान से अपनी रक्षा करनी चाहिये। किसी भी परिस्थिति में ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये जिससे अपमान की प्राप्ति हो॥80॥

किसी भी काम को करने के पहले किन पाँच बातों का ध्यान रखना चाहिये? अब यहाँ इस कार्यसिद्धि दायक नीति को कहते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

कालो य कम्मं धण-साहणं च, ठाणं च पंचण्ह वियारिदूणं।
कस्सिं पि कज्जे गमणं करिज्जा, अण्णत्त हाणी किल लाहठाणे॥81॥

अन्वयार्थ—**(कालो)** काल अर्थात् समय **(य)** और **(कम्मं च)** कर्म और, **(धण-साहणं च)** धन, साधन और **(ठाणं)** स्थान; इन **(पंचण्ह विचारिदूणं)** पाँचों का विचार करके **(कस्सिं पि कज्जे)** किसी भी कार्य में **(गमणं करिज्जा)** गमन अथवा प्रवृत्ति करना चाहिये। **(अण्णत्त)** अन्यथा **(लाहठाणे)** लाभ के स्थान **(किल हाणी)** निश्चित ही हानि होती है॥81॥

भावार्थ—नीतिकारों का मानना है कि—कार्यसिद्धि के लिये कभी भी किसी भी काम को करने के पहले उस पर विचार-विमर्श आवश्यक है। साथ ही साथ कुछ ऐसी बातों का भी ध्यान रखना चाहिये जो आपके काम को सफल होने में सहायता करे और असफल होने से बचाये। यहाँ ऐसी ही नीति को बतला रहे हैं कि—**जिन्हें लाभ की इच्छा हो उन्हें किसी भी काम को करने के पहले समय अर्थात् वक्त या काल, कर्म, धन, साधन अर्थात् आय एवं स्थान यानि क्षेत्र का ज्ञान कर लेना चाहिये, इसके पश्चात् ही कार्यारम्भ करना चाहिये। ऐसा नहीं करने पर लाभ के स्थान पर हानि का सामना निश्चित रूप से करना पड़ता है॥81॥**

सफल होने के लिये किनसे दूर रहना चाहिये? अब यहाँ इस सफलता प्रदायक नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

उप्पादगादो जण-चिंतणादो, संपक्कदो ऊसर वा णिरासं।
आसा हु जोदी विउले तमे वि, पयास-संदेस-मवि त्ति देदि॥82॥

अन्वयार्थ—**(णिरासं उप्पादगादो)** निराशा उत्पन्न करनेवालों से, **(वा जण-चिंतणादो संपक्कदो)** निराशा उत्पन्न करनेवाले विचारों और संपर्कों से **(ऊसर)** सदा ही दूर रहिये। **(आसा हु जोदी त्ति)** आशा ही एक ज्योति है जो **(विउले तमे वि)** घोर अंधकार में भी **(पयास-संदेसं अवि)** प्रकाश के होने का संदेश ही **(देदि)** देती है॥82॥

भावार्थ—सफल होने के लिये विधि रूप से कुछ लोगों के साथ-साथ कुछ चीज़ों का भी होना अति आवश्यक होता है। साथ ही साथ निषेध रूप से कुछ लोग और कुछ चीज़ों का न होना भी अति-आवश्यक होता है। इसी सफलता प्रदायक नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**सफल होने के लिये निषेध रूप से निराशा को उत्पन्न करनेवाले मानवों से, निराशा को उत्पन्न करनेवाले स्वयं और दूसरों को सत्-असत् विचारों से और निराशा जनक संगति-संपर्कों से प्रयत्नपूर्वक दूरी बनाना चाहिये। अकेले रहना श्रेष्ठ है मगर निराश लोगों के साथ रहना श्रेष्ठ नहीं है। एवं विधिरूप से आशावादी बनना चाहिये अर्थात् कार्य के प्रति सकारात्मक रवैया बनाकर चलना**

चाहिये। आशा की ज्योति कभी बुझनी नहीं चाहिये, क्योंकि आशा एक ऐसी ज्योति है जो घोर-अंधकार में भी प्रकाश के होने का संदेश ही देती है॥82॥

प्रेरणा .....

किसी बालक ने पूछा-
हिन्दी वर्णमाला में
पहले छोटा वर्ण (अ) है,
बाद में बड़ा वर्ण (आ) है
ऐसा क्यों?
मैंने कहा-
ये वर्ण ही नहीं
हमारे प्रेरणास्त्रोत भी हैं,
ये हमें छोटे से
बड़ा बनना सिखाते हैं
बड़े से
छोटा बनना नहीं।

किससे क्या सीखना चाहिये? अब यहाँ इस बुद्धि प्रदायक नीति का व्याख्यान करते हैं—

(उपजाति)

विदे सया पीलगदो पयासं, लूदाय सिप्पो बगदो सुजुत्तिं।
सगस्स वड्ढीय सया हि घट्ट, साफल्ल-सिद्धी हवदे अवस्सं॥83॥

अन्वयार्थ—**(सया)** हमेशा **(पीलगदो पयासं)** चींटी से मेहनत; **(लूदाय सिप्पो)** मकड़ी से शिल्पकला अर्थात् कारीगरी, **(बगदो सुजुत्तिं)** बगुले से युक्ति अर्थात् तरकीब **(विदे)** सीखना चाहिये। **(सगस्स वड्ढीय)** अपनी वृद्धि और विकास के लिये **(सया हि घट्ट)** हमेशा ही संघर्ष करें, **(अवस्सं)** अवश्य हि **(साफल्ल-सिद्धी हवदे)** सफलता की सिद्धि होती है॥83॥

भावार्थ—नीतिकार कहते हैं जब जहाँ जैसे जिससे जो मिले, तब वहाँ वैसे उससे वो सीखना चाहिये, बुद्धि, अनुभव और ज्ञान का संवर्धन अथा विकास करते रहना चाहिये। कुछ बुद्धि लोगों की जीत देखकर बढ़ानी चाहिये और कुछ बुद्धि हार से सीखकर बढ़ानी चाहिये। ऐसी ही बुद्धि-वर्धक नीति का व्याख्यान करते हुये यहाँ कहा गया कि—**हमेशा चाहे दिन हो या रात चींटी से परिश्रम अर्थात् मेहनत करना सीखें, मकड़ी (लूता) से शिल्पकला अर्थात् कारीगरी सीखें और बगुला पक्षी से तरकीब लगाना, युक्ति खोजना सीखें। चाहे जो हो जाये अपने विकास के लिये सदा ही संघर्ष करना चाहिये,**

क्योंकि जो जितना संघर्ष करता है उसकी प्रज्ञा और हिम्मत उतनी बढ़ती चली जाती है। इस नीति को अपने जीवन में उतारने से सफलता जरूर हासिल होती है॥**४३**॥

सबसे बड़ा गुरु.....

एक बच्चे ने पूछा-
आपका सबसे बड़ा गुरु कौन है?
मैंने कहा-
वक्त,
क्योंकि
जो गुरु और किताबें
नहीं सिखा पाये
वो वक्त ने मुझे सिखाया है।

(उपेन्द्रवज्रा)

मनुष्य कहलाने का सौभाग्य किसका है? अब यहाँ इस मनुष्यत्व दायक नीति का कथन कर रहे हैं—

णरो य तं भास वियारसीलो, सगो व्व होदूण गहेदि णिच्चं।
पराण लाहं सुह-दुक्ख-हाणिं, वियप्प-संकप्प-किदंत-मेव॥84॥

अन्वयार्थ—जो **(वियारसीलो होदूण)** विचारशील होकर **(सगो व्व परस्स)** अपने समान अन्यों के **(लाहं सुह-दुक्ख-हाणिं)** सुख, दुःख, लाभ, हानि **(वियप्प-संकप्प-किदंतं य)** संकल्प-विकल्प और कृतांत अर्थात् मृत्यु को **(गहेदि)** समझता है, **(तं एव णरो भास)** उसको ही नर अर्थात् मनुष्य कहो॥84॥

भावार्थ—मानव होना अलग बात है और मानव होने के साथ-साथ मानवता होना अलग ही बात है। संख्या की अपेक्षा मनुष्य बहुत सारे हैं, मगर मनुष्यता अथवा मानवता की अपेक्षा से मनुष्य विरले हैं। मनुष्य बनकर मनुष्य कहलाने का सौभाग्य किसे मिलता है, ऐसी मानवता को जगानेवाली नीति का कथन करते हुये यहाँ कह रहे हैं कि—**जो मननशील और विचारवान होता हुआ अपने ही समान दूसरे जीवों के सुख-दुःख, लाभ-हानि, संकल्प-विकल्प अथवा मृत्यु आदि विचित्र परिस्थितियों को समझता है अर्थात् इन सभी संवेदनाओं का अनुभवन करता है, उस मनुष्य जन्म प्राप्त मानव को ही मानव कहे जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है, अन्य को नहीं॥84॥**

मानव होने पर भी निर्जीव कौन है? अब यहाँ इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

महत्तकंखाय सुपेरणा हि, दिढत्त-वड्ढिं तह साहसं च।
जच्छेदि जीवं अणुरत्तिमेवं, जीवो इमेसिं अचरो अभावे॥85॥

अन्वयार्थ—**(महत्तकंखाय सुपेरणा)** महत्त्वाकांक्षा की सत्प्रेरणा **(जीवं)** जीव को **(साहसं च)** साहस और **(तहा दिढत्त-वड्ढिं)** दृढ़ता की वृद्धि तथा **(अणुरत्तिं)** लगन को **(जच्छेदि)** प्रदान करती है, **(इमेसिं अभावे)** इन सबके अभाव में **(जीवो)** जीव **(अचरो एवं)** निर्जीव हो जाता है॥85॥

भावार्थ—जीव होने पर भी अजीव की तरह जीवन जीनेवाले, चेतन होने पर भी अचेतनवत् जीवन का निर्वाहन करनेवाले लोग दुनिया में हजारों-लाखों की संख्या में हैं, मगर मानव होकर मानव की तरह सोच रखनेवाले लोग विरले ही हैं। मानव होने पर भी, सजीव होकर भी निर्जीव की तरह जीवन कौन जीता है, इस नीति का कथन करते हुये यहाँ कहा गया कि—**महत्त्वाकांक्षी मानव ही सजीव हो सकता है। महत्त्वाकांक्षा की सत्प्रेरणा ही मानव को साहस, दृढ़ता की वृद्धि और लगन दे सकती है। साहस, दृढ़ता और लगन, इन तीनों के न होने पर जीव जड़ता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् निर्जीव-सा हो जाता है।** अतः शेष गुण हों न हों, मगर साहस, दृढ़ता और लगन हमेशा आपके अंदर होना चाहिये॥85॥

बुद्धिमान मनुष्यों को लोक व्यवहार का निर्वाह कैसे करना चाहिये? अब यहाँ इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

रक्खं करंतं णियमाण णाणिं, लोयस्स कुज्जा ववहार-वित्तिं।
चलंति णाणीहि सुणिच्छिदम्हि, साहारणा चावि किदे सुमग्गे॥86॥

अन्वयार्थ—**(णाणिं)** बुद्धिमान पुरुष को **(णियमाण रक्खं करंतं)** नियमों की रक्षा करते हुये **(लोयस्स ववहार-वित्तिं कुज्जा)** लोक के व्यवहार की वृत्ति करना चाहिये, क्योंकि **(णाणीहि सुणिच्छिदम्हि किदे सुमग्गे)** ज्ञानियों के द्वारा ही सुनिश्चित किये गये मार्ग में **(चावि साहारणा चलंति)** और भी सर्वसाधारण मानव चलते हैं अर्थात् उसी का अनुसरण करते हैं॥86॥

भावार्थ—सामान्य मानव विशिष्ट लोगों के आचरण और क्रियाओं का अनुसरण करते हैं, वहीं विशिष्ट लोग मार्ग का निर्माण करते हैं। अतः विशेष लोगों को अथवा बुद्धिमान पुरुषों को लोक व्यवहार का निर्वाह कैसे करना चाहिये, इस नीति को कहते हुये यहाँ कहा कि—**बुद्धिमान लोग कभी नियमों का उल्लंघन नहीं करते हैं, अपितु उन्हें नियमों का पालन करते हुये लोक व्यवहार का निर्वाह करना चाहिये। बुद्धिमानों को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिये कि उन्हीं के द्वारा निश्चित किये गये मार्ग में सर्वसाधारण जन भी चलते हैं॥86॥**

प्राप्त संपत्ति का अपव्यय करनेवालों का क्या होता है? अब यहाँ इस नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

हविज्ज दीणो वयसील-जीवो, बज्झं कुणे सा पर-आसयत्थं।
खिप्पं णिमंतिज्ज य भट्ठवित्तिं, अप्पं वयं कुव्वहि संगहीदा॥87॥

अन्वयार्थ—(**वयसील-जीवो**) खर्चीला व्यक्ति (**खिप्पं दीणो हविज्जा**) शीघ्र ही निर्धन और दीन हो जायेगा, (**सा**) वह निर्धनता (**पर-आसयत्थं**) पराश्रयता के लिये (**बज्झं कुणे**) बध्य करती है (**य**) तथा (**भट्ठवित्तिं णिमंतिज्ज**) भ्रष्टवृत्ति अर्थात् भ्रष्टाचार को निमंत्रित करती है, अतः (**संगहीदा**) संग्रहीत द्रव्य से (**अप्पं वयं कुव्वहि**) अल्प ही व्यय करें॥87॥

भावार्थ—धन, संपत्ति और वैभव का आपके जीवन में आना बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात है उनका आपके जीवन में निरंतर बने रहना। जो व्यक्ति आय के अनुसार व्यय को करता है अथवा आय से कम व्यय करता है, उसी के पास सुख-शान्ति और धनाढ्यता का सद्भाव रहता है। धन का अपव्यय करनेवालों के साथ क्या होता है, इस रक्षणात्मक नीति को कहते हुये यहाँ कहा गया कि—धन का अपव्यय करनेवाले खर्चीले व्यक्ति शीघ्रातिशीघ्र दीन और निर्धन हो जाया करते हैं और निर्धनता उस अज्ञानी को परतन्त्र होने के लिये, पराश्रय लेने के लिये बाध्य कर देती है; साथ ही साथ पराश्रयता और निर्धनता उसे भ्रष्टाचार के मार्ग का निमंत्रण भी देती है। अतः समझदार लोगों को चाहिये कि जो भी धनादि उनके पास है, वे उससे कम ही व्यय करें॥87॥

मूर्खों के लक्षण क्या क्या हैं? अब यहाँ इस नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

अधम्म-बुद्धी हि जडस्स धम्मे, सुधम्मधी होदि तहा अधम्मे।
अमिट्ठ-भासी हढ-बुद्धिमाणो, मूढस्स णेयं किल चिण्हमेवं॥४४॥

अन्वयार्थ—**(धम्मे अधम्म-बुद्धी)** धर्म में अधर्म-बुद्धि, **(तहा)** तथा **(अधम्मे सुधम्मधी)** अधर्म में सद्धर्म-बुद्धी **(जडस्स हि होदि)** मूर्ख अथवा जड़ पुरुष की ही होती है, **(एवं)** एवं **(अमिट्ठ-भासी हढबुद्धिमाणो)** अमिष्टभाषी अर्थात् अप्रियवादिता और हठबुद्धिमत्ता भी **(किल मूढस्स चिण्हं णेयं)** मूर्ख लोगों के ही चिह्न जानना चाहिये॥४४॥

भावार्थ—किसी भी व्यक्ति अथवा वस्तु को जानने के लिये पहचानने के लिये उसके अंतरंग-बहिरंग लक्षणों को जानना बहुत आवश्यक है। चिह्न, लक्षण, अथवा क्रियाओं के द्वारा मनुष्य के बारे में जाना जा सकता है, इसी बात को नीति के माध्यम से यहाँ कह रहे हैं कि—**अगर किसी की अधर्म-कार्यों में धर्मरूप बुद्धि हो अथवा धर्म-कार्यों में अधर्मरूप बुद्धि हो तो वह मनुष्य मूर्ख ही है। इसके अलावा कड़वे बोल कहना, अप्रियवादी होना तथा हठबुद्धि होना अर्थात् हठीप्रवृत्ति होना; यह भी मूर्ख मनुष्यों के ही बहिरंग लक्षण समझना चाहिये।** अगर आप में ये लक्षण हैं तो आप बुद्धिमानों की नहीं मूर्खों की श्रेणी में ही आयेंगे॥४४॥

किस प्रकार से जीते और मरते आ रहे हैं लोग? अब यहाँ इस आध्यात्मिक नीति का कथन कर रहे हैं—

(उपजाति)

अण्णस्स इत्थी-धण-जीवणस्स, अतित्तिदूणं विसए मणुस्सा।
जीवीअ जीवंति जिविस्सिरे वा, कुणेहि किच्चं तुह एरिसं मा॥89॥
धम्मत्थ-भोगादर-जीवणस्स, अतित्तिदूणं विसए मणुस्सा।
मिज्जीअ मिज्जंति मरिस्सिरे वा, कुणेहि किच्चं तुह एरिसं मा॥90॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—(**अण्णस्स**) अन्न के, (**इत्थी-धण-जीवणस्स विसए**) स्त्री, धन और जीवन के विषय में (**मणुस्सा अतित्तिदूणं**) सभी मनुष्य अतृप्त होकर (**जीवीअ जीवंति वा जिविस्सिरे**) जीते थे, जी रहे हैं अथवा जीते रहेंगे; (**तुह एरिसं किच्चं मा कुणेहि**) तुम ऐसा कृत्य मत करो।

(**धम्म-अत्थ-भोग-आदर**) धर्म, अर्थ, भोग, आदर और (**जीवणस्स विसए**) जीवन के विषय में (**मणुस्सा अतित्तिदूणं**) सभी मनुष्य अतृप्त होकर (**मिज्जीअ, मिज्जंति वा मरिस्सिरे**) मरे थे, मर रहे हैं अथवा मरेंगे; (**तुह एरिसं किच्चं मा कुणेहि**) तुम ऐसा कृत्य मत करो॥**89-90**॥

भावार्थ—सारी दुनिया के लोग जैसे जीते और मरते आ रहे हैं, आपको भी वैसे ही जीना-मरना नहीं है। अतृप्त होकर जो जीता है, उसका जीना किसी काम का नहीं है और जो अतृप्त होकर मरता है उसे ही बार-बार मरना पड़ता है। सांसारिक विषयों में रुचि करके कोई भी आज तक तृप्त नहीं हुआ, न हो रहा है,

न ही होवेगा। भोगों में तृप्ति नहीं लालसा है। योगों में लालसा नहीं संतृप्ति है। ऐसी ही आध्यात्मिक नीति का कथन करते हुये बता रहे हैं कि—**भोजन, स्त्री, धन, संपत्ति और जीवन के विषय में सभी प्राणी अतृप्त होकर जीते थे, जी रहे हैं और जीते रहेंगे; मगर हे नीतिज्ञ पुरुषो! आप लोग ऐसा मत करना। धर्म, अर्थ, काम, कीर्ति और जीवन के विषय में अतृप्त होकर मरे थे, मर रहे हैं और मरते रहेंगे; मगर हे नीतिज्ञ पुरुषो! आप लोग ऐसा मत करना॥89-90॥**

होनहार .....

जो
हार होने पर भी,
हार न मानकर,
हार के
अहसास को भूलकर
जीत का
हार पहनने की कोशिश
निरन्तर करता रहता है,
मैं तो उसे ही
होनहार मानता हूँ।

निषेध में आकर्षण होता है? अब यहाँ इस आकर्षणकारी नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

पसंगदो कादु सया णिसेहे, मणुस्स कंखा खलु चावि तस्स।
अदीवकंखा अहिवड्ढएदि, आगस्सणं होदि जदो णिसेहे॥91॥

अन्वयार्थ—**(कादु पसंगदो)** किसी प्रसंग से **(णिसेहे)** रोकने पर **(सया खलु)** सदा **(मणुस्स कंखा तस्स)** मनुष्य की आकांक्षा उसके लिये **(अदीवकंखा)** अतीव आकांक्षा **(चावि अहिवड्ढएदि)** और भी बढ़ती है, **(जदो)** क्योंकि **(णिसेहे आगस्सणं होदि)** निषेध में आकर्षण होता है॥91॥

भावार्थ—आकांक्षायें मानव-जीवन में आती जाती रहती हैं। भूलोक हो या देवलोक शब्दों और बातों के कारण सभी जगह महत्त्वाकांक्षायें, आकर्षण, धीरज, बेचैनी आदि परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। यहाँ ऐसी ही आकर्षणकारी नीति का कथन करते हुये बता रहे हैं कि—**किसी भी बात या प्रसंग से रोकने पर मनुष्य की अतीव्र आकांक्षायें उसके लिये उत्पन्न होती हैं और अधिक बढ़ती भी जाती हैं, क्योंकि निषेध में आकर्षण होता है। किसी को आकर्षित करने का तरीका निषेध करना भी है। आप निषेध करेंगे तो लोगों का आकर्षण जरूर बढ़ेगा॥91॥**

सबसे बड़ी सम्पत्ति क्या है? अब यहाँ इस रक्षात्मक और ज्ञानात्मक नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

जेहिं गुणेहिं णर-जीविगा ते, हवे पसंसा सुगुणीजणाणं।
वड्ढेदु रक्खेदु गुणाण तेसिं, ण केई वित्तं विउलं गुणादो॥92॥

अन्वयार्थ—**(जेहिं गुणेहिं)** जिन गुणों से **(णरजीविगा पसंसा य हवे)** मनुष्य की जीविका और प्रशंसा होती है; **(सुगुणी-जणाणं)** सद्गुणी जनों को **(तेसिं गुणाणं)** उन गुणों की **(रक्खेदु ते वड्ढेदु)** रक्षा करनी चाहिये, उनको बढ़ाना चाहिये। **(गुणादो)** गुणों से **(विउलं वित्तं ण केई)** बड़ी कोई सम्पत्ति नहीं होती है॥92॥

भावार्थ—सम्पत्ति उस वस्तु का नाम है जो मनुष्य के रक्षा के काम आती है। सम्पत्ति के मुख्य दो भेद हैं। एक अंदर की, दूसरी बाहर की। बाहर की सम्पत्ति के बारे में आप सभी लोग जानते हैं, यहाँ अंदर की सम्पत्ति के बारे में बता रहे हैं। जो अंदर की सम्पति की पहचान कर लेता है, उसे कभी गरीबी नहीं देखनी पड़ती है। यहाँ ऐसी ही रक्षणात्मक और ज्ञानात्मक नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**जिन जिन गुणों से मनुष्य की आजीविका चलती है, उसकी प्रशंसा होती है; गुणीजनों को उन गुणों की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये, उनको निरन्तर बढ़ाना चाहिये। आपके गुण आपकी अंतरंग सम्पत्ति है और इससे बड़ी कोई और सम्पत्ति नहीं होती है॥92॥**

जीवन में होनेवाले हादसों से लाभ क्या-क्या हैं? अब यहाँ इस उन्नति दायक नीति का व्याख्यान करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

सव्वाणि वत्थूणि चराचरस्स, फुडुंति णिच्चं खलणा तुडंति।
एगो णरो णं किल एस जीवो, आघाददो चेव य सिज्झदे जो॥९३॥

(उपजाति)

आघाददो वा विमुहेसु मा तुं, गहेसु सिक्खं च इमादु णाणं।
आघाददो साणुहवो य जीवो, आघाददो होदि णरो सुणाहो॥९४॥ (जुगं)

अन्वयार्थ—**(चराचरस्स)** संसार की **(सव्वाणि वत्थूणि)** सभी वस्तुयें **(खलणा)** ठोकर लगने से या स्खलन होने से **(णिच्चं)** हमेशा ही **(तुडंति फुडुंति)** टूटती हैं, फूटती हैं; **(णं एगो णरो किल एस जीवो)** किन्तु एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है **(जो)** जो **(आघाददो चेव य सिज्झदे)** आघात या ठोकर लगने से ही बनता है।

(तुं वा) तुम मगर **(आघाददो विमुहेसु मा)** ठोकरों से मत घबराओ, **(च)** अपितु **(इमादु)** इनसे **(सिक्खं णाणं गहेसु)** शिक्षा लो, ज्ञान लो। **(आघाददो)** आघातों से **(जीवो साणुहवो)** जीव अनुभव सहित हो जाता है **(य)** और **(आघाददो)** ठोकरों से ही **(णरो होदि सुणाहो)** मनुष्य सुनाथ अर्थात् ठाकुर हो जाता है॥९३-९४॥

भावार्थ—जीवन में लाभ और हानि का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

विशेष बात यह है कि लाभ के काल में धनादि की वृद्धि होती है, मगर बुद्धिमान लोग हानि के काल में अनुभवों की वृद्धि करते हैं और अनुभव की वृद्धि या संग्रह आगामी लाभ के लिये परमावश्यक है। अनुभव वह नाम है जो मानवजन सुधीजन अपनी गलतियों को देते हैं अथवा दूसरों की गलतियों को देखकर सीखा गया पाठ भी अनुभव की ही श्रेणी में ही आता है। अनुभवी व्यक्ति की उन्नति रोक पाना अत्यन्त कठिन काम है। यहाँ पर ऐसी ही उन्नति देनेवाली नीति कह रहे हैं कि—**संसार की चल-अचल सारी वस्तुयें ठोकर लगने से प्रायः करके टूट जाया करती हैं, किन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो ठोकर लगने से बन जाता है, ऊँचाइयाँ छू जाता है। जब भी आपके जीवन में ठोकरें लगे तो घबराने या दुःखी होने की अपेक्षा उनसे शिक्षा लें, ज्ञान लें। कारण कि ठोकरों से आप अनुभवी बन जाते हैं और अनुभवी हमेशा जीतता है। ध्यान रखें-ठोकरें ही ठाकुर बनाती हैं॥93/94॥**

सारा आसमान .....

जो लोग
दूसरों का सहारा लेते हैं,
उनकी उड़ान सीमित है;
जो लोग
खुद के सहारे चलते हैं,
उनके लिये सारा आसमान है।

जीवन में उपलब्धियाँ और लक्ष्य प्राप्त करने का क्या उपाय है? अब यहाँ इस लब्धिप्रदायक नीति का कथन करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

विज्जेदि भीदी धवमाण-पच्छा, विज्जेदि अग्गे किल धावगस्स।
एगोवलद्धी हि लहिज्ज लक्खं, धावेहि णिच्चं च पलाय मा तुं॥95॥

अन्वयार्थ—(**धवमाण-पच्छा**) भागनेवाले के पीछे (**भीदी विज्जेदि**) भय विद्यमान रहता है (**च**) और (**धावगस्स अग्गे किल**) दौड़नेवाले के आगे निश्चित ही (**एग-उवलद्धी विज्जेदि**) एक उपलब्धि होती है; अतः (**मा तुं पलाय**) तुम भागो मत (**णिच्चं हि धावेहि**) हमेशा दौड़ना ही सीखो, (**लक्खं लहिज्ज**) लक्ष्य मिलेगा॥95॥

भावार्थ—बिना लक्ष्य का जीवन मृततुल्य ही होता है, इसलिये हर एक प्राणी को अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर ही लेना चाहिये। बड़ी-बड़ी उपलब्धियाँ छोटे-छोटे लक्ष्यों से ही प्राप्त होती हैं। डरनेवाले कभी भी उपलब्धियों के स्वामी नहीं बन पाते हैं, डटे रहनेवाले ही उपलब्धियाँ प्राप्त कर पाते हैं। यहाँ पर लब्धि देनेवाली नीति बता रहे हैं कि—**भागनेवाले के पीछे डर हमेशा बना ही रहता है और दौड़नेवाले के आगे हमेशा ही एक नई उपलब्धि रहती है। इसलिये हे मानव! तुम परेशान होकर भागो मत, हमेशा दौड़ना सीखो एक दिन लक्ष्य जरूर प्राप्त होगा॥95॥**

आपके दुःख का कारण आप ही हैं? अब यहाँ इस स्वाश्रितभाव प्रदायक नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

किलेस-चिक्कार-विलावगस्स, सयं पुलेज्जा जदि तं दसाए।
से कारणं तं सयमेव अप्पं, तं सीगदिं से करणस्स देसि॥96॥

अन्वयार्थ—(**जदि**) यदि (**तं**) तुम (**सयं**) स्वयं को (**किलेस-चिक्कार-विलावगस्स दसाए**) क्लेश, तनाव और विलाप की अवस्था में (**पुलेज्जा**) देख रहे हो, तो (**से कारणं**) उसका कारण (**तं सयमेव**) तुम स्वयं ही हो, क्योंकि (**तं अप्पं**) तुमने अपने आपको (**से करणस्स**) ऐसा बनाने की (**सीगदिं देसि**) स्वीकृति दी है॥96॥

भावार्थ—अपने सुख का कारण आप स्वयं ही हैं और अपने दुःख का कारण भी आप स्वयं ही हैं। बाहर के लोग केवल निमित्त या कारण हो सकते हैं, मगर उपादान तो आप स्वयं ही होते हैं। दुनिया आपको दुःख तो दे सकती है, मगर दुःखी होना न होना आपके ही हाथों में हैं। यहाँ स्वाश्रय भाव बनाकर रखनेवाली नीति बता रहे हें कि—**यदि आप खुद को संक्लेश, विलाप और तनावपूर्ण अवस्था में देख रहे हैं, तो उसके जिम्मेदार आप स्वयं हैं, दूसरा नहीं; क्योंकि आपने दूसरों को ऐसा बनाने की स्वीकृति प्रदान की है॥96॥**

स्थिर-अस्थिर मनुष्य जीवन के कारण क्या हैं? अब यहाँ इस स्थिरता दायक नीति को कहते हैं—

(उपजाति)

सारल्ल-भावं च दयालुदा वा, सहिण्णुदा वा विणयत्तमेवं।
इमेसु थंभेसु णरत्त-सोहो, थंभेदि जस्सिं च इमा गुणादो॥97॥
गुणस्स एगस्स सिया अभावो, मणुस्सदा तेण गमेहि तस्स।
पादाण तिण्हं तिय-पीढ-तुल्ला, से जीवणं तो अथिरं हि होदि॥98॥

अन्वयार्थ—(**सारल्ल-भावं च**) सरलता और (**दयालुदा वा**) दयालुता और (**सहिण्णुदा वा**) सहिष्णुता और (**विणयत्तं एवं**) विनयशीलता; (**इमेसुं थंभेसु**) इन स्तंभों पर ही (**णरत्त-सोहो थंभेदि**) मानवता का महल टिका है। (**च जस्सिं**) और जिसमें (**इमा गुणादो**) इन गुणों में से (**एगस्स गुणस्स**) एक भी गुण का (**सिया अभावो**) किंचित् भी अभाव हो (**तो**) तो (**गमेहि तस्स मणुस्सदा**) समझो उसकी मनुष्यता (**पादाण तिण्हं तिय-पीढ-तुल्ला**) तीन पायों की कुर्सी की तरह है, (**तेण**) इसलिये (**से जीवणं**) उसका जीवन (**अथिरं हि होदि**) अस्थिर ही है॥97-98॥

भावार्थ—मानव जीवन में कभी स्थिरता के दर्शन होते हैं तो कभी-कभी अस्थिरता का भी सामना करना पड़ता है। ऐसा गुणों में हीनता और अधिकता के कारण से होता है। जब स्थिरता रहती है तब आनन्द, धार्मिकता, सुख आदि की

वृद्धि होती है और जब अस्थिरता रहती है तब क्लेश, तनाव, दुःख आदि की वृद्धि देखी जाती है।

यहाँ मानवता के महल को स्थाई रखनेवाले चार खंभों की चर्चा करते हुये कहा गया कि—**सरलता, दयालुता, सहिष्णुता और विनयशीलता; इन चार सुदृढ़ स्तंभों के सहारे से ही मानवता का महल स्थिर है, टिका है। जिस भी मनुष्य में इन चार गुणों में से एक भी गुण की किंचित् भी कमी हो जाये तो, समझ लेना चाहिये कि उसकी मानवता अस्थिर है तीन पायों की कुर्सी की तरह। उसका सम्पूर्ण जीवन अस्थिर ही रहेगा॥97-98॥**

अलग रहना .....

दुनिया से अलग रहना
हर किसी को
पसंद नहीं आता है,
ये काम तो
उन्हें ही पसंद आता है
जो खुद से
जुड़े रहने का
प्रयास करते हैं;
या फिर
खुद से जुड़े रहते हैं।

भाग्य बनाने का उपाय क्या है? अब यहाँ इस गूढ़ नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

सोहग्ग-दुब्भग्ग-दसा णरस्स, असक्कदाए किल अत्थि णामो।
समं हि जाणेमि विधायगो हं, परिस्समो वा सुभगं कसेदि॥99॥

अन्वयार्थ—**(सोहग्ग-दुब्भग्ग-दसा)** सौभाग्य और दुर्भाग्य की दशा **(णरस्स किल असक्कदाए)** मनुष्य की ही अशक्यता के **(णामो अत्थि)** नाम हैं, **(हं)** मैं तो **(समं हि विधायगो जाणेमि)** परिश्रम को ही विधायक और नियामक समझता हूँ। **(परिस्समो वा)** परिश्रम ही तो **(सुभगं)** सौभाग्य को **(कसेदि)** खींच लाता है॥99॥

भावार्थ—भाग्य और पुरुषार्थ दोनों ही मानव जीवन में आवश्यक हैं। केवल भाग्य भरोसे ही मत बैठे रहना, बिना पुरुषार्थ के कुछ भी फलित नहीं होता है। दुनिया में जो कुछ लोग सौभाग्य और दुर्भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं, उन लोगों से यहाँ कह रहे हैं कि—**सौभाग्य और दुर्भाग्य की अवस्था मनुष्य की अशक्यता अथवा दुर्बलता के ही नाम जानो। आपका आप जानें; मैं तो मेहनत, पुरुषार्थ अथवा परिश्रम को ही सबका नियामक मानता हूँ; क्योंकि पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींचकर लाता है। आज का पुरुषार्थ कल का भविष्य है और पूर्व में किया गया पुरुषार्थ आज का सौभाग्य है॥99॥**

महान पुरुष पग-पग पर सफलता कैसे पा लेते हैं? अब यहाँ इस सफलता देनेवाली नीति को कहते हैं—

(उपजाति)

सज्झस्स जंते अणुकूलदा वा, धुणे महाणा पडिकूलदा वा।
सव्वत्थ-सिद्धी य पगे पगे सिं, चुंबेदि पुज्जेदि पदा सदा हि॥100॥

अन्वयार्थ—**(अणुकूलदा वा पडिकूलदा वा)** अनुकूलता हो या फिर प्रतिकूलता **(महाणा)** महान पुरुष **(सज्झस्स धुणे जंते)** साध्य की धुन में बढ़ते जाते हैं, यही कारण है कि **(सव्वत्थ-सिद्धी)** सभी अर्थों की सिद्धि **(य)** सफलता आदि **(पगे पगे सिं)** पग-पग पर उनके **(पदा चुंबेदि)** कदम चूमती है, **(सदा हि पुज्जेदि)** हमेशा ही पूजती है॥100॥

भावार्थ—सामान्यजन पग-पग पर असफलता का मुख देखते हैं, वहीं विशिष्ट जनों के लिये सफलता और ऊँचाइयाँ पग-पग पर कदम चूमती हैं। कारण कि—**विशेष लोगों में सामान्य लोगों की अपेक्षा परिश्रम की अधिकता पायी जाती है।** जिसका परिश्रम अधिक होगा उसका भविष्य भी उतना अधिक उज्ज्वल होगा। अकसर सामान्य लोग प्रतिकूलताओं के आने पर बिखर जाते हैं, मगर विशेष लोग बिखरते नहीं अपने परिश्रम के बल के कारण निखर जाते हैं। स्वव्यक्तित्व को निखारने के लिये यहाँ कह रहे हैं कि—**अनुकूलता हो या फिर प्रतिकूलता महापुरुष ही लक्ष्य की धुन में आगे बढ़ते जाते हैं और इसी**

कारण से सफलता हर वक्त उनके कदम चूमती है, हर समय उनका आदर-सत्कार होता है और सभी अर्थों की सिद्धि सहज ही उन्हें प्राप्त हो जाती है॥100॥

रक्षा .....

शरीर की रक्षा
बाद में है,
अपने आदर्शों की,
अपने उसूलों की,
अपने नाम की,
अपने सम्मान की
रक्षा पहले है;
क्योंकि
आदर्शों, नाम और
सम्मान के अभाव में
शरीर की कोई कीमत नहीं है।

सबसे सरल और सबसे कठिन काम क्या हैं? अब यहाँ इस बुद्धिवर्धक नीति को कहते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

सव्वादु कज्जं अगमं च किंपि, दोसेण णाणा करणं सया हि।
सव्वादु कज्जे सुगमं हि तस्सिं, अण्णेसणं चेदि पराण दोसा॥101॥

अन्वयार्थ—**(सव्वादु अगमं)** सबसे कठिन है **(किंपि कज्जं)** किसी भी काम को **(सया हि)** हमेशा ही **(दोसेण णाणा करणं)** बिना गलती के करना **(च)** और **(सव्वादु सुगमं)** सबसे सरल है **(तस्सिं कज्जे हि)** उस ही काम में **(पराण दोसा अण्णेसणं च इदि)** दूसरों के दोषों का अन्वेषण करना, उनकी त्रुटियाँ खोजना॥101॥

भावार्थ—कार्य हमेशा सरल ही होते हैं कठिन होता है, उस काम को करने का निर्णय लेना। नीतिकार कहते हैं कि दूसरों की गलतियाँ देखना बहुत सरल है, मगर स्वयं बिना गलतियों के काम करना कठिन है। यहाँ ऐसी ही बुद्धिवर्धक नीति कह रहे हैं कि—**किसी भी छोटे या बड़े काम को बगैर किसी गलती के करना सबसे मुश्किल काम है और उसी काम में दूसरों की गलतियाँ खोजना सबसे आसान काम है। दूसरों की गलतियाँ खोजना सांस लेना जितना सरल है और अपनी गलतियों को सुधारना उन्हें खोजना पर्वत उठाने जितना कठिन है॥101॥**

एक स्थान में अधिक ठहरने से हानि है? अब यहाँ इस गुणवर्धक नीति को कहते हैं—

(उपजाति)

अवट्ठिदेणं जलमेयठाणे, दुव्वास-जुत्तं तह बीय-चंदो।
जत्ता-णिमित्तेण य पुण्णचंदो, चिट्ठेदु पोच्चे णवि एय-ठाणे॥102॥

अन्वयार्थ—(**जलं एय-ठाणे**) जल एक स्थान में (**अवट्ठिदेणं**) अवस्थित रहने से (**दुव्वास-जुत्तं**) दुर्वास से युक्त हो जाता है (**तह**) तथा (**बीय-चंदो**) द्वितीया का चंद्रमा (**जत्ता-णिमित्तेण**) यात्रा के निमित्त से (**पुण्ण-चंदो**) पूर्ण चन्द्र हो जाता है, (**य**) इसलिये (**एयठाणे**) एक स्थान में (**पोच्चे**) बहुत अधिक (**णवि**) नहीं (**चिट्ठेदु**) ठहरना चाहिये॥102॥

भावार्थ—एक स्थान पर अधिक रुकने से हानि अधिक और लाभ कम होता है। आधिक्य किसी भी चीज़ का हो, वह योग्य नहीं होता। रुकने की अपेक्षा गमनागमन होते रहना चाहिये। यहाँ आत्मगुणों को बढ़ाने के लिये गुणवर्धक नीति कह रहे हैं कि—**चाहे कोई भी कितना ही आग्रह क्यों न करे, मगर एक स्थान में बहुत अधिक दिनों तक नहीं ठहरना चाहिये, क्योंकि जल जब एक स्थान में रुक जाता है तो बदबूदार हो जाता है और दूज का चाँद घूमता रहता है तो पूर्णचन्द्र बन जाता है। अतः अपने गुणों को बढ़ाने के लिये अथवा अपने गुणों को बचाने के लिये एक स्थान पर बहुत अधिक नहीं ठहरना चाहिये॥102॥**

सफलतायें किसको प्राप्त होती हैं? अब यहाँ इस विजय देनेवाली नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

चुंबेदि तेसिं विजयो हि पादा, पसंग-कज्जस्स य दोण्णि पक्खा।
पस्संति वा कस्सचि जे गहंति, अधीरदाए णवि णिच्छयंति॥103॥

अन्वयार्थ—**(विजयो)** विजय **(तेसिं हि)** उनके ही **(पादा चुंबेदि)** चरणों को चूमती है **(जे कस्सचि)** जो किसी भी **(पसंग-कज्जस्स य)** प्रसंग या कार्य के **(दोण्णि पक्खा)** दोनों पक्षों को **(पस्संति गहंति वा)** देखते हैं और समझते हैं, लेकिन **(अधीरदाए)** अधीरता में **(णिच्छयंति णवि)** निर्णय नहीं लेते हैं॥103॥

भावार्थ—जीवन के हर एक निर्णय को अच्छे से सोच-समझकर लेना। हर बात को हर पहलू से सोचें, अपने नज़रिये के साथ-साथ दूसरों के नज़रिये से भी उसे देखें। कई बार व्यक्ति सही होता है और आपका नज़रिया गलत होने के कारण आप उसे गलत मान बैठते हैं। यहाँ गलती बचाने के लिये नीति कह रहे हैं कि—**सफलता उन्हीं के चरण चूमती है जो किसी भी समस्या या काम के दोनों पक्षों को देखते हैं, समझते हैं। जो लोग जल्दबाज़ी में एक पक्ष को देखकर निर्णय ले लेते हैं, उन्हें सफलता कभी नहीं मिलती है। इसलिये सफल होने के लिये जल्दबाज़ी में कोई भी निर्णय न लें॥103॥**

मनुष्य लोक के जन्म का क्या प्रयोजन है? अब यहाँ इस आध्यात्मिक नीति का कथन करते हैं—

(उपजाति)

सुहस्स भोगस्स हवेदि सग्गो, दुहस्स भोगस्स हवे तमिस्सो।
उच्छेरिदूणं च सुहा दुहादो, आणंद-लद्धीय सुजीव-लोगो॥104॥

अन्वयार्थ—(**सुहस्स भोगस्स**) सुख के भोग के लिये (**सग्गो हवेदि**) स्वर्ग है (**च**) और (**दुहस्स भोगस्स**) दुःख के भोग के लिये (**तमिस्सो हवे**) नरक है एवं (**सुहा दुहादो उच्छेरिदूणं**) सुख से दुःख से ऊँचे उठकर (**आणंद-लद्धीय**) आनन्द की प्राप्ति के लिये (**सुजीव-लोगो**) सुन्दर मनुष्य लोक है॥104॥

भावार्थ—मनुष्य जन्म निष्प्रयोजन नहीं जाना चाहिये। हर कार्य का एक न एक प्रयोजन अवश्य होता है। मनुष्य पर्याय एक आयोजन है और धर्मध्यान पूर्वक मरण करना यह मनुष्यजन्म का प्रयोजन है। यहाँ आध्यात्मिक नीति का कथन करते हुए कह रहे हैं कि—**सुख के भोगने के लिये स्वर्ग है, दुःखों को भोगने के लिये घोर अंधकारमय नरक है और सुख-दुःख दोनों से ऊपर उठकर आत्मा के उच्चतम आनंद के लिये, यह मनुष्य लोक है। इस मनुष्य लोक में जन्म लेकर मोक्ष का पुरुषार्थ किया जा सकता है, अतः यह मनुष्य लोक ही सर्वश्रेष्ठ आनन्द देनेवाला लोक है॥104॥**

आजीविका का साधन एक होना चाहिये या अनेक? अब यहाँ इस दूरदर्शिता को देनेवाली नीति का कथन करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

मेत्तेय-कज्जे किल आसिदूणं, आजीविगाए पुण तुज्झ किच्चं।
चिण्हं लहुं माणसिगत्तमेव, हुज्जा अणेगा ववसाय-जुत्ती॥105॥

अन्वयार्थ—**(मेत्त-एय-कज्जे)** मात्र एक कार्य पर **(किल)** ही **(आसिदूणं)** निर्भर होकर **(आजीविगाए)** आजीविका का **(किच्चं)** कार्य **(तुज्झ लहुं माणसिगत्तं एव चिण्हं)** तुम्हारी छोटी और संकीर्ण मानसिकता का ही चिह्न है। **(पुण)** इसलिये **(ववसाय-जुत्ती अणेगा हुज्जा)** व्यवसाय की युक्ति अथवा साधन अनेक ही होना चाहिये॥105॥

भावार्थ—समझदार व्यक्ति धनार्जन का पुरुषार्थ करता है, वहीं नासमझ व्यक्ति धन के अपव्यय का कुश्रम करता है। धनार्जन का पुरुषार्थ अल्पहिंसामय होना चाहिये साथ ही साथ धन के आगमन के कई द्वार बनाकर रखना चाहिये। एक ही व्यापार पर आश्रित जन बहुधनवान् नहीं बन पाते हैं। व्यापारी के अंदर दूरदर्शिता का गुण होना अत्यन्त आवश्यक है और इसी गुण को बढ़ानेवाली नीति में यहाँ कह रहे हैं कि—**सिर्फ एक कार्य या व्यापार पर निर्भर होकर आजीविका चलाना आपकी छोटी और संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है। बिना सही योजना के सफलता अधूरी रहती है, इसलिये आजीविका के साधन अनेक होना चाहिये। आजीविका के एक साधन पर आश्रित नहीं रहना चाहिये॥105॥**

किसके ज्ञान बिना आप क्या-क्या हैं? अब यहाँ इस पूर्णता को देनेवाली नीति का व्याख्यान करते हैं—

(इन्द्रवज्रा)

जम्मंधगो लक्खण-णाण-रित्तो, मूगो तहा णाय-विणाण-रित्तो।
पंगू हवे कव्व-विणाण-रित्तो, रंको पुणो कोस-विणाण-रित्तो॥106॥

जो माणवो णीदि-विणाण-रित्तो, होदूण णाणी अवि सो अणाणी।
णादूण सव्वे णिय-णाण-रित्तो, जो सो हवे जेट्ठअमो अणाणी॥107॥

(जुगं)

अन्वयार्थ—(**जो माणवो**) जो मनुष्य (**लक्खण-णाणरित्तो**) व्याकरण के ज्ञान से रहित है, (**सो जम्म-अंधो**) वह जन्मान्ध है; जो मनुष्य (**णाय-विणाण-रित्तो**) न्याय के ज्ञान से रहित है, वह (**मूगो**) मूक है; (**तहा**) तथा जो मनुष्य (**कव्व-विणाण-रित्तो**) काव्य और साहित्य के विज्ञान से रहित है, वह (**पंगू हवे**) लंगड़ा है, पंगू है; जो मनुष्य (**कोस-विणाण-रित्तो**) कोष विज्ञान से रहित है, वह (**रंको**) रंक है, निर्धन है; (**पुणो**) पुनः (**जो माणवो**) जो मनुष्य (**णीदि-विणाण-रित्तो**) नीतिज्ञान से रहित है, (**सो णाणी होदूण अवि**) वह ज्ञानी होकर भी (**अणाणी**) अज्ञानी है; (**जो णिय-णाण-रित्तो**) जो स्वयं के ज्ञान से रहित है (**सो सव्वे णादूण**) वह सब कुछ जानकर भी (**जेट्ठअमो अणाणी**) सबसे बड़ा अज्ञानी है॥106-107॥

भावार्थ—ज्ञान विश्व की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। ज्ञान रहित मानव केवल

एक पुतले के समान निर्जीव की तरह माना जाता है। ज्ञान के क्षेत्र में अनेक प्रकार की कलाओं और विधाओं का वर्णन मिलता है। आज के परिपेक्ष में हर व्यक्ति को ज्ञान रूपी धन की प्राप्ति का परिश्रम जरूर करना चाहिये। जितना ज्ञान बढ़ता है, आनन्द और सतर्कता भी उतनी ही बढ़ती जाती है। यहाँ पर ज्ञानमय बनने के लिये पूर्णता को देनेवाली नीति का कथन करते हुये कह रहे हैं कि—**जो मनुष्य व्याकरण के ज्ञान से रहित है, वह जन्मान्ध है; जो मनुष्य न्याय के विषय के ज्ञान से रहित है, वह गूँगा है, मूक है; जो मनुष्य साहित्य या काव्य के ज्ञान से रहित है, वह लंगड़ा है, जो मनुष्य कोष के विज्ञान से रहित है, वह रंक है, वह निर्धन है; जो मनुष्य नीतिज्ञान से रहित है, वह ज्ञानी होकर भी अज्ञानी है तथा जो स्वयं के ज्ञान से रहित है, वह सब कुछ जानकर भी सबसे बड़ा अज्ञानी है॥106-107॥**

दाग .....

चादर पर
लगा दाग
मिट सकता है,
पर
दामन पर
लगा दाग,
कर्मों के मिटने पर भी
नहीं मिट सकता है।

अब यहाँ ग्रन्थ के कर्ता और ग्रन्थ अध्ययन के फल का वर्णन करते हैं—

(शार्दूलविक्रीड़ित)

आणासिद्ध-विसुद्ध-सेट्ठ-चरियावंतो गुरू णीदिधी,
आदिच्चो सुकवी पियग्ग-समणो, भासा-पडू तस्स हि।
सिस्सो तेण किदं पमेय-सहिदं, णीदी-रहस्सं वरं,
से गंथस्स सुपाढणे सुपढणे, पण्णा-विगासो हवे॥108॥

अन्वयार्थ—(**आणासिद्ध**) आज्ञासिद्ध (**विसुद्ध-सेट्ठ-चरियावंतो णीदिधी गुरू**) श्रेष्ठ चर्या के स्वामी और नीतिमान आचार्य गुरुवर श्री विशुद्धसागर जी हैं। (**तस्स हि**) उनके ही (**भासा-पडू**) भाषा-पटु, (**पियग्ग-समणो**) प्रियाग्र श्रमण, (**सुकवी**) मधुर कवि, (**आदिच्चो सिस्सो**) आदित्यसागर नामक शिष्य हुये। (**तेण**) उनके द्वारा ही (**पमेय-सहिदं वरं णीदि-रहस्सं**) उत्तम प्रमेय युक्त यह नीति-रहस्य ग्रन्थ (**किदं**) लिखा गया है। (**से गंथस्स**) इस ग्रन्थ को (**सुपढणे सुपाढणे**) अच्छे से पढ़ने पर, अच्छे से पढ़ाने पर (**पण्णा-विगासो हवे**) प्रज्ञा और बुद्धि का विकास होता है॥108॥

भावार्थ—उपसंहार करते हुये ग्रन्थकार अपने गुरु का नाम, अपना नाम, ग्रन्थ का नाम और ग्रन्थ के अध्ययन का फल बताते हुये कह रहे हैं कि—**श्रेष्ठ**

चर्या के स्वामी, महानीतिज्ञ, आज्ञासिद्ध आचार्य भगवन् गुरुवर श्री विशुद्ध-सागर जी हुये। उनके ही प्रियाग्र शिष्य, भाषाविद्श्रमण-मधुरकवि, श्रमण आदित्सागर जी हुये। उनके द्वारा नाना प्रमेय युक्त महान् ज्ञान समन्वित यह ''नीति-रहस्य'' ग्रन्थ लिखा गया है। इस ग्रन्थ को अच्छे से पढ़ने और पढ़ाने से बुद्धि का चतुर्मुखी विकास होता है॥108॥

धोखा .....

हमारा दिल
सबसे ज्यादा दुःखी
तब होता है....
जब कोई अपना
हमें पीठ पीछे धोखा देता है,
मगर आँसू तब निकल पड़ते हैं
जब वह पूछता है-
क्या बात है?
आज बड़े उदास लग रहे हो।

पसत्थी

अणादिणिहण - कम्मसिद्धंतभासग - सणादण - दियंबर - जेण -समण - सक्किदीए पढमतित्थेसो आदिसंकरो पहु - उसहदेवो इह काले सव्वप्पढमो सच्चत्थ-मग्गदरिसग-अरहंतो जादो। तित्थयरेसुं आदिच्चो व्व पयासमाणो जसस्सी चरमतित्थेसो अम्मेहिं सह वीसस्स कुलदेवदा, अहिंसा-णीदि-बोहस्स बोहगो देवाधिदेवो महावीरसामी जादो। वट्टमाण-सासण-णायगस्स वड्ढमाण-सामिस्स मोक्खगमणोवरंतं णाणा-केवली-सुदकेवली-सुदण्हु-भयवंता वि जादा। पुणो पंचमयाले सगपर-विसोहि-रक्खगो पागिदभासाए अज्जकई दियं-बराइरिय-कुंदकुंद-सामी जादो।

एवमेव जिणसासण-रक्खग-पहावग-संवड्ढग-समणपरंपराए घोरत-वस्सी-समणेसुं पहाणो वीसप्पसिद्धो पढम-समणाइरियो पूदपरंपराए वणवासी, मुणिकुंजर-आदिसागर-अंकलीयरो जादो। तस्सेव पढमसिस्सो पट्टाइरियो जंत-मंत-तंत-गूढणाओ, णाणसिरोमणी, अट्ठारस-भासा-विदू, सुद्ध-विसुद्ध-आयारगो, जिद-उवसग्ग-परीसहो, सव्वजणहिदू, आइरिय-महावीरकित्ती जादो।

तस्स पढमसिस्सो णिमित्तणाण-सिरोमणी, वच्छल्लदिवायरो, सव्वजणो-द्धारगो, मंताणं गूढणादा-पओत्ता, वाणीसिद्धो, विमलमणो आइरिय-विमल-सायरो समणराओ जादो। तस्स सिस्सो जिद-उवसग्गो, सिद्धंत-चक्कवट्टी, चारित्त-सिरोमणी, रयणत्तयवड्ढिणी-पहुदि-अणेग-सक्किद-टीगाकत्ता, विसाल-चदुव्विह-संघणायगो, अप्पाणुसासिदो, अणुसासणप्पियो, गुरुगणी-पद-पदाया, महम्हि सदा सगीय-वरदहत्थ-वहमाणो, विरागमणो गणाइरिय-विरागसागरो समणेसो जादो।

तस्स पियग्ग-पढमसिस्सो, चरिया-सिरोमणी, सदद्दी-देसणाइरियो, सक्किदि-सासणाइरियो, सज्झाय-संवड्ढगो, सुत्तत्थ-विसारदो, सिद्धंत-अज्झप्प-णयणायादि-विज्जा-पवीणो सच्चत्थबोहादि-दुसयाहिग-गंथकत्तारो, विसाल-णिग्गंथ-समणसंघणायगो दुसयाहिग-पंचकल्लाणग-पदिट्ठाकारगो, विसुद्धमणो, मम दिक्खा-सिक्खागुरू समणाइरियो सिरिविसुद्धसागरो जादो।

तस्सेव पीदिपत्त-पागिदविज्जाविसणी-सुदसंवेगी-अप्पाहारी-बहुपरि-स्समी-आदिविज्जाथुदि-आदकित्तणादि-दुसय-सक्किदपागिद अवब्भंसहिंदी-गंथकत्ता-सिद्धहत्थ-वीसविक्खाद-सुदपुत्त-समणादिच्चसागरेण अस्स णीदि-रहस्स-गंथस्स रयणं किदं।

अस्स गंथस्स मंगलाचरणं सुहारंभं च फग्गुण-किण्ह-चउद्दसीए, आदिच्चवारे, सवणणक्खत्ते, सव्वत्थसिद्धि-जोगे, पहु-वासुपुज्जसामिस्स जम्मतव-कल्लाणगदिवसे पहु-पासणाहसामिस्स चरणणिस्साए चिरगाम-णयरे उत्तरप्पएसे किदं।

चिरगामणयर-उत्तरपएसस्सेव पावणभूमीए फग्गुण-सुक्क-सत्तमीए, आदिच्चवारे, भरणी-णक्खत्ते, बंभजोगे पहु-चंदणाहसामिस्स मोक्खक-ल्लाणग-दिवसे पहु-चंदणाहसामिस्स चरण-णिस्साए इदं णीदिरहस्स-गंथं संपुण्णं किदं।

छंदावेक्खाए अट्ठाहिगसय-छंदपमाणो वा एगूण-पण्णारसाहिग-सय-सिलोगपमाणो अयं णीदिरहस्सगंथो बुद्धि-अत्थ-पुण्ण-पीदिवड्ढगादि-णीदि-परिपूरिदो। इह गंथे रक्खप्पग-पेरणप्पग-गुणप्पग-सव्वविह-णीदी उवलद्धा। अस्स गंथस्स पढण-पाढणेहिं होदि बुद्धि-पुण्ण-धिज्जवड्ढी तहा होदि मूढत्त-पाव-संकिलेसत्त-हाणी वि। गंथो पढणीयो रक्खणीयो पयासणीयो त्थि। इदि अलं।

॥ णमो णमो सिद्ध-साहूणं ॥

प्रशस्ति

अनादिनिधन कर्मसिद्धान्त को बतानेवाली सनातन दिगंबर जैन श्रमण संस्कृति में प्रथमतीर्थेश आदिशंकर भगवान् वृषभदेव इस काल में सर्वप्रथम सत्यार्थ मार्गदर्शक अरहंत हुये। तीर्थंकरों में आदित्यवत् प्रकाशमान यशस्वी अंतिम-तीर्थेश हम सब के साथ विश्व के कुलदेवता, अहिंसा और नीति का बोध करानेवाले भगवान् महावीर स्वामी हुये। वर्तमान के शासननायक वर्धमानस्वामी के मोक्षगमन के उपरान्त अनेकों केवली, श्रुतकेवली और श्रुतज्ञ भगवंत भी हुये। पुनः पंचमकाल में स्वपर-विशुद्धि के रक्षक, प्राकृत भाषा के आद्यकवि दिगंबराचार्य कुंदकुंदस्वामी का उद्भव हुआ।

इसी जिनशासन-रक्षक, प्रभावक, संवर्धक श्रमण परंपरा में घोरतपस्या करनेवाले श्रमणों में प्रधान, विश्व-प्रसिद्ध, प्रथम श्रमणाचार्य, पूतपरंपरा में वनवासी, मुनिकुंजर श्री आदिसागर जी अंकलीकर हुये। उनके ही प्रथम शिष्य, पट्टाचार्य यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र के गूढ़ ज्ञाता, ज्ञान-शिरोमणि, अट्ठारह-भाषाविद्, शुद्ध-विशुद्धाचारक, उपसर्ग-परीषह-जेता, सर्वजनहितकारक आचार्य भगवन् महावीरकीर्ति जी हुये। जिनकी कीर्ति आज भी विश्व में सुवासित है।

उनके प्रथम शिष्य निमित्तज्ञान-शिरोमणि, वात्सल्य-दिवाकर, सर्वजनोद्धारक, मन्त्रों के गूढ़ज्ञाता और प्रयोक्ता, वाणीसिद्ध, विमलमनः आचार्य श्री विमलसागर जी श्रमणराज हुये।उनके शिष्य उपसर्ग विजेता, सिद्धान्त-चक्रवर्ती, चारित्र-शिरोमणि, रत्नत्रयवर्धिनी आदि अनेकों संस्कृत-टीका ग्रंथों के कर्त्ता, विशालचतुर्विध संघनायक, आत्मानुशासित, अनुशासनप्रिय, गुरुगणीपद प्रदाता, मुझ पर सदा अपना वरदहस्त रखनेवाले विरागमनः गणाचार्य श्री विरागसागर जी श्रमणेश हुये।

उनके प्रियाग्र प्रथम शिष्य, चर्याशिरोमणि, शताब्दी-देशनाचार्य, संस्कृति-शासनाचार्य, स्वाध्याय-संवर्धक, सूत्रार्थ-विशारद, सिद्धान्त-अध्यात्म-नयन्यायादि-विद्याप्रवीण, सत्यार्थ-बोधादि 200 से अधिक ग्रन्थों के सृजेता, विशाल-निर्ग्रन्थ श्रमण संघनायक, 200 से अधिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाकर्ता, विशुद्धमनः मम दीक्षा-शिक्षा गुरु श्रमणाचार्य भगवन् श्री विशुद्धसागर जी हुये।

उनके ही प्रीतिपात्र, विद्याव्यसनी, श्रुतसंवेगी, अल्पाहारी, बहुपरिश्रमी, आदिविद्या-स्तुति-आत्मकीर्तनादि 200 संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी आदि ग्रंथों के कर्ता, सिद्धहस्त, विश्वविख्यात, श्रुतपुत्र श्रमण श्री आदित्यसागरजी ने इस नीतिरहस्य ग्रन्थ की रचना की है।

इस ग्रन्थ का मंगलाचरण एवं शुभारंभ फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन, आदित्यवार, श्रवणनक्षत्र, सर्वार्थसिद्धियोग में, भगवान् श्री वासुपूज्य स्वामी के जन्म एवं तप कल्याणक के दिन, भगवान् श्री पार्श्वनाथ स्वामी की चरण निशा में चिरगाँव उत्तरप्रदेश में किया।

चिरगांव उत्तर प्रदेश की ही पावन भूमि में फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के दिन, आदित्यवार, भरणी नक्षत्र, ब्रह्मयोग में, भगवान् श्री चन्द्रनाथस्वामी के मोक्षकल्याणक के दिन, भगवान् श्री चन्द्रनाथ स्वामी की चरण निश्रा में इस नीतिरहस्य नामक ग्रन्थ को सम्पूर्ण किया।

छंदापेक्षा 108 छंद प्रमाण अथवा 149 श्लोक प्रमाण यह नीतिरहस्य ग्रन्थ बुद्धिवर्धक, अर्थवर्धक, धर्मवर्धक, पुण्यवर्धक, प्रीतिवर्धकादि नीति से भरपूर है। इस ग्रन्थ में रक्षात्मक, प्रेरणात्मक और गुणात्मक सभी प्रकार की नीतियाँ उपलब्ध हैं। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से बुद्धि, पुण्य और धीरज की वृद्धि होती है तथा मूढ़ता, पाप और संक्लेशता की हानि भी होती है। यह ग्रन्थ पठनीय, रक्षणीय, प्रकाशनीय है। इति अलं।।

॥ णमो णमो सिद्ध-साहूणं ॥

श्लोकानुक्रमणिका

'अ'	श्लोक	पृष्ठ
अच्चंत-माणं तह	75	78
अण्णस्स इत्थी-धण	89	94
अण्णस्स जीवस्स	74	76
अण्णस्स दोसं णवि	15	14
अण्णादु इच्छेदि	55	55
अदीव-णाणिं च	66	66
अदीव-भोजी कडु-उग्ग	50	50
अधम्म-बुद्धी हि	88	93
अपुज्ज-पूया जहि	36	35
अरोगदा वा रिणहीणदा	45	45
अवट्ठिदेणं जलमेय	102	108
असज्जणा संगढिदा	43	43
'आ'		
आघाददो वा विमुहेसु	94	98
आणासिद्ध-विसुद्ध	108	114
आदिच्च-उग्गं पउरं	39	38
आयो वयो वा कदि	9	8
आलस्स जुत्तो सइ	35	34
आलोयगादो णवि	77	80
आसत्ति-हीणो सग	5	4

	श्लोक	पृष्ठ
आसीसदो सग्गुरुणो	8	7
'इ'		
इच्छेसि तं तो	68	69
इच्छंति णीचा य	54	54
'ई'		
ईसा य कोहो सइ	46	46
'उ'		
उज्जोग-गामी हवदे	71	72
उप्पादगादो जण	82	85
उम्मत्त-णागा तह	24	23
'क'		
कट्ठं परासत्त-पदी	52	51
कत्तो दिणेसो कमलं	63	63
कम्मेहि दुक्खेहि	61	61
करंति मूढो लहुकज्ज	49	49
काऊण णमुक्कारं	2	1
कालो य कम्मं धण	81	84
किलेस-चिक्कार	96	101
किंचण्ण मं दिंतहि	29	28
किं चेव लोहो	26	25
कुलस्स धम्मायरणेण	21	20
कुलं कुपुत्तो समणं	11	9
'ग'		
गिहत्थ-कट्ठं रिणधारणं	51	51

	श्लोक	पृष्ठ
गुणस्स एगस्स	98	102
गुणा विहा णो जदि	78	81
'च'		
चुंबेदि तेसिं विजयो	103	109
'ज'		
जम्मंधगो लक्खण	106	112
जेहिं गुणेहिं णर	92	97
जो अण्ण-जीवस्स	47	47
जो अप्प-वीसास	37	36
जो माणवो णीदि	107	112
'ण'		
णरो य तं भास	84	89
णाणादु णिच्चं	53	53
णिच्चं धणं अद्धधणं	13	12
णिद्दोस-विज्जा जदि	27	25
णीचा भयं होदि	80	83
ण्हाणं-तणं चेव	69	70
'द'		
दाणं समीवे विणयो	59	59
दारा-हिदू पंडिद	56	56
'ध'		
धम्मत्थ-भोगादार	90	94
धम्मादि-कज्जाणि	16	14

'प'	श्लोक	पृष्ठ
पवित्त-जीवेहि समं	48	48
पसंगदो कादु सया	91	96
पावस्स वित्तीय	64	64
पियासणं कुव्वदु	42	42
पुत्तं कुसीलं कुलणासगं	18	16
पुत्तं ण णित्थारदि	40	39
पुरादणाघाद-मिदीय	44	44
'ब'		
बुद्धी विवेगो तह	30	29
'भ'		
भूदत्थ-वादित्त-मवि	6	5
भंभो विणं सव्व-धणं	7	6
'म'		
महत्तकंखाय सुपेरणा	85	90
माया-पिदू ता मल	76	79
मिच्छा सुबुद्धी णवि	79	81
मित्तस्स माणं मिलणे	62	62
मित्ती अहेदू अमदं	14	13
मेत्तेय-कज्जे किल	105	111
'र'		
रक्खं करंतं णियमाण	86	91
रागी-पहुं वा विसई	17	16
रूवं जरा सेट्ठ-धिदिं	10	9

'ल'	श्लोक	पृष्ठ
लुद्धं धणेणं विणया	20	19
लोए गुरूणं कडु	32	31
लोहेण पण्णा	31	30
'व'		
वड्ढेदि मेत्ती पिय	22	21
वड्ढेदि सम्मायरणेण	23	21
विज्जा तवो वित्त	60	60
विज्जेदि भीदी	95	100
विज्झेदि णिच्चं	38	37
विण्णाण-विज्जा	67	68
विदे सया पीलगदो	83	87
विसाख-पच्छा वरिसा	41	40
वीसासदो सामदु	57	57
वेस्सा य भिक्खू	70	71
'स'		
सगस्स आउं सग	28	27
सगं सुहं देदि ण	3	3
सगं हवित्ता चउरो	34	33
सज्झस्स जंते	100	105
सड्ढा जुदो चेव	73	75
सदोस-संगं अबले	19	18
समादरेणं पुण छत्त	58	57
सव्वकला संपण्णं	1	1
सव्वाणि वत्थूणि	93	98

	श्लोक	पृष्ठ
सव्वसादु कज्जं अगमं	101	107
सव्वेहि वेरिं बहु	25	24
ससत्तिदाणं च किदत्थदा	12	11
साधीण-सत्तूहि रिवुं	72	74
सारल्ल्ल-कारुण्ण	4	4
सारल्ल-भावं च	97	102
सुणाण-लाहे सइ	33	32
सुहस्स भोगस्स हवेदि	104	110
सोहग्ग-दुब्भग्ग	99	104
संगं ण मुंचेदि	65	64
'ह'		
हविज्ज दीणो वयसील	87	92

श्रुतसंवेगी विशुद्धरत्न महाश्रमण आदित्यसागर जी द्वारा रचित साहित्यश्रम

I मौलिक रचना साहित्य–

● **प्राकृत भाषा में–**

1. **णीदिरहस्सं** (नीति रहस्य)
2. **णीदि-पाहुडं** (नीति-प्राभृत)
3. **णीदि-सुत्तं** (नीति-सूत्र)
4. **णीदि-विज्जा** (नीति-विद्या)
5. **आदकित्तणं** (आत्मकीर्तन)
6. **धम्म-सदगं** (धर्म-शतक)
7. **णीदि-पसूण** (नीति प्रसून)
8. **सिक्खा-सुत्तं** (शिक्षा-सूत्र)
9. **जीवण-सुत्तं** (जीवन-सूत्र)
10. **संति-थुदी** (शान्ति-स्तुति)
11. **रिट्ठणेमि-थोत्तं** (अरिष्टनेमि-स्तोत्र)
12. **भारहेस-थुदी** (भरतेश-स्तुति)
13. **णवागढ-णंउदर-थुदी** (नवागढ़-नंदपुर-स्तुति)
14. **कम्मरोगहरं-थोत्तं** (कर्मरोगहर-स्तोत्र)
15. **मंगल-थोत्तं** (मंगल-स्तोत्र)
16. **सुद्धप्प-वंदणा** (शुद्धात्मवंदना)
17. **णमोत्थुसासण-थुदी** (नमोस्तुशासन-स्तुति)
18. **उसहदेव-थुदी** (वृषभदेव-स्तुति)
19. **अजियदेव-थुदी** (अजितदेव-स्तुति)
20. **संभवदेव-थुदी** (संभवदेव-स्तुति)
21. **अहिणंदणदेव-थुदी** (अभिनंदनदेव-स्तुति)
22. **सुमइदेव-थुदी** (सुमतिदेव-स्तुति)
23. **पउमदेव-थुदी** (पद्मदेव-स्तुति)
24. **सुपासदेव-थुदी** (सुपार्श्वदेव-स्तुति)
25. **चंददेव-थुदी** (चन्द्रदेव-स्तुति)
26. **पुप्फयंतदेव-थुदी** (पुष्पदंतदेव-स्तुति)
27. **सीयलणाह-थुदी** (शीतलनाथ-स्तुति)
28. **सेयदेव-थुदी** (श्रेयांसदेव-स्तुति)
29. **वासुपुज्जदेव-थुदी** (वासुपूज्य-स्तुति)
30. **विमलदेव-थुदी** (विमलदेव-स्तुति)
31. **अणंतदेव-थुदी** (अनंतदेव-स्तुति)
32. **धम्मदेव-थुदी** (धर्मदेव-स्तुति)
33. **संतिदेव-थुदी** (शान्तिदेव-स्तुति)
34. **कुंथुदेव-थुदी** (कुन्थुदेव-स्तुति)
35. **अरदेव-थुदी** (अरदेव-स्तुति)
36. **मल्लिदेव-थुदी** (मल्लिदेव-स्तुति)
37. **मुणिसुव्वय-थुदी** (मुनिसुव्रत-स्तुति)
38. **णमिदेव-थुदी** (नमिदेव स्तुति)
39. **णेमिदेव-थुदी** (नेमिदेव-स्तुति)
40. **पासदेव-थुदी** (पार्श्वदेव-स्तुति)
41. **वीरदेव-थुदी** (वीरदेव-स्तुति)

42. **विरागट्ठगं** (विरागाष्टक)
43. **विमस्स-वंदणा** (विमर्श-वंदना)

● **संस्कृत भाषा में–**

44. **आदिविद्या-स्तुतिः**
45. **हितमणिमाला**
46. **सद्भावना-पंचविंशतिः**
47. **सत्यार्थ-नीतिः**
48. **जिनशासन-सहस्त्रनाम**
49. **सरस्वती-बृहन्नाम-स्तोत्रम्**
50. **अरिष्टनेमिनाथ-स्तोत्रम्**
51. **शासनालंकार-स्तोत्रम्**
52. **जिनबिम्ब-स्तोत्रम्**
53. **जिनदेवाष्टक-स्तोत्रम्**
54. **आदिवीर-शंकर-स्तोत्रम्**
55. **वर्धमान-कर्मशंकर-स्तोत्रम्**
56. **वृषभादि-मंगलाष्टकम्**
57. **समन्तभद्र-स्तोत्रम्**
58. **निजानन्द-स्तोत्रम्**
59. **स्तुत्यष्टकम्**
60. **नेमिनाथ-स्तोत्रम्**
61. **पार्श्वनाथ-स्तवनम्**
62. **शान्ति-स्तवनम्**
63. **अयिगिरि-सरस्वती-स्तुतिः**
64. **गोम्मटेश-स्तुतिः**
65. **विशुद्धगुरु-स्तोत्रम्**
66. **स्तोत्र-संग्रहः**

● **अपभ्रंश भाषा में–**

67. **वारसाणुवेक्खु (द्वादशानुप्रेक्षा)**

● **हिन्दी भाषा में–**

68. **भक्तामर-विधान**
69. **आध्यात्मिक प्रबंधन**
70. **गुरु-शिष्य (भाग-1)**
71. **गुरु-शिष्य (भाग-2)**
72. **गुरु-शिष्य (भाग-3)**
73. **गुरु-शिष्य (भाग-4)**
74. **अनुपमेय-माँ**
75. **मृत्यु**
76. **पथ**
77. **अपनी आवाज**
78. **अंतर्यात्रा**
79. **अंतर्जल्प**
80. **अंतर्ध्वनि**
81. **अंतर्मुखी**
82. **अंतर्मन की बातें**
83. **अपने लिये**
84. **जीवन-नीति**
85. **संदेश**
86. **ॐ इग्नोराय नमः**
87. **घोर इग्नोराय नमः**
88. **दृष्टान्त से स्वान्त**
89. **शान्तता ठेवा**
90-139. **सही-बातें** (उड़ान, अनुभव आदि 50 भागों में)

II अनुवादित रचना साहित्य–

● **प्राकृत भाषा में–**

140. **इट्ठोवएस-भासं** (इष्टोपदेश भाष्य 3575 श्लोक प्रमाण)

141. **सरूवसंबोहण-परिसीलणं** (स्वरूप संबोधन-परिशीलन 3975 श्लोक प्रमाण)
142. **समाहितंत-अणुसीलणं** (समाधितंत्र-अनुशीलन 5511 श्लोक प्रमाण)
143. **साणुहव-तरंगिणी** (स्वानुभव-तरंगिणी 1011 श्लोक प्रमाण)
144. **णियाणुहव-तरंगिणी** (निजानुभव-तरंगिणी 2300 श्लोकप्रमाण)
145. **अप्पबोहो** (आत्मबोध 1635 श्लोक प्रमाण)
146. **रयणत्तयवड्ढिणी टीगा** (रत्नत्रयवर्धिनी टीका 8656 श्लोक प्रमाण)
147. **सच्चत्थबोहो** (सत्यार्थबोध-4000 श्लोक प्रमाण)
148. **कम्मविवागो** (कर्मविपाक/कार्याधीन)
149. **णियमदेसणा** (नियमदेशना/कार्याधीन)
150. **अज्झप्प-णीदी** (अध्यात्म-नीति 450-श्लोक प्रमाण)
151. **पंचसील-सिद्धंतो** (पंचशील-सिद्धांत-511 श्लोक प्रमाण)
152. **वियारो** (विचार)
153. **बोधवाक्यामृत**
154. **सूक्तिसुधा**
155. **दिव्व-वयणं** (दिव्यवचनं)
156. **भव्व-वयणं** (भव्यवचनं)
157. **सुद्धोवआगो** (शुद्धोपयोगः/कार्याधीन)

● **संस्कृत भाषा में–**

158. **आत्मबोधः**

● **अपभ्रंश भाषा में–**

159. **अप्पबोहु**
160. **बोध-वाक्यामृतं**
161. **सूक्ति-सुधा**

● **कन्नड़ भाषा में–**

162. **सरस्वती-स्तोत्रम्**
163. **उवसग्गहरं थोत्तं**
164. **गणधरवलय-स्तोत्रम्**
165. **श्री परमर्षि स्वस्ति-मंगल-स्तोत्रम्**
166. **सीयलेस-थोत्तं**
167. **निर्ग्रन्थ-गुरु-पूजा**

● **हिन्दी भाषा में–**

168. **झाणज्झयण-पाहुड** (श्रीमत्कुंदकुंदाचार्य कृत)
169. **सुभाषितार्णव** (अज्ञातकृत 1300 से अधिक श्लोक प्रमाण)
170. **तत्त्वार्थसारदीपक** (आ.सकलकीर्ति रचित 1900 श्लोक प्रमाण)
171. **गणधरवलय-स्तोत्र**

III संकलित साहित्य–

172. **देशना-बिंदु**
173. **देशना-संचय**
174. **तत्त्वबोध**
175. **तत्त्वतरंगिणी**
176. **वंदना-पथ**
177. **पुरानी बातें** (भाग-1)
178. **पुरानी बातें** (भाग-2)
179. **कर्मरहस्य** (भाग 1-2)
180. **तीर्थंकर विज्ञान**

181. **संकल्प**
182. **आदिच्च-किरिया-सायरो** (हिन्दी प्राकृत क्रियाकोश)
183. **आदिच्च-अव्यय-सायरो** (हिन्दी प्राकृत अव्ययकोश)
184. **व्यसन-रहस्य** (हिन्दी-अंग्रेजी)
185. **पुरानी बातें (भाग-3)**

IV **संपादित साहित्य में–**

- **भावत्रयफलप्रदर्शी** (आचार्य कुंथुसागर जी कृत)
- **धर्मपरीक्षा** (आ. अमितगतिस्वामी कृत)
- **नारी बनो सदाचारी** (आर्यिका 105 विशुद्धमति माताजी कृत)
- **तच्चबोहो** (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
- **विसुद्धवयणामिदं** (श्रमण अप्रमित-सागर द्वारा अनुवादित)
- **सारसुत्तं** (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
- **बोहिसुत्तं** (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा अनुवादित)
- **विशुद्ध-निधि** (श्रमण आस्तिक्यसागर जी कृत)
- **सम्मग्ग-चिंतणं** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **अमिद-बिंदू** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **सम्म-वियारो** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **मनन** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **मर्यादा** (श्रमण अप्रमितसागर द्वारा रचित)
- **साधुवचनं** (हाईकू) (श्रमण अप्रमित-सागर द्वारा रचित)
- **परिवर्तन** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **शब्द अपने** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **मंथन** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **उद्बोधन** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **अप्रमित कलम** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **अप्रमित अहिंसा** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **समन्वय** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **शब्दामृत** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **सफलता** (श्रमण अप्रमितसागर जी कृत)
- **सत्यार्थ सूत्र** (श्रमण सहजसागर जी संकलित)

पूज्यवर अभी तक लगभग 50,000 श्लोक प्रमाण प्राकृत/संस्कृत/श्लोक रचना/अनुवाद कर चुके हैं। प्रायः करके लिपिबद्ध साहित्य अभी अप्रकाशित है, लगभग 100 कृतियाँ ही प्रकाशित हैं। हम प्रयासरत हैं कि शीघ्रातिशीघ्र समग्र साहित्य प्रकाशित होकर पाठकों को प्राप्त हो।

—समर्पण समूह, भारत